रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

# संत-प्रसादी

(भाग – 12)

परम संत
डा.करतार सिंह जी महाराज
के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि.)
9-रामकृष्ण कोलोनी, जी.टी.रोड,
ग़ाज़ियाबाद-201009 (उ.प्र.)

# प्रस्तावना

समय-समय पर पूज्य गुरुदेव के मुखारविंद से निकली हुई अमृतवाणी हम सबके लिए प्रेरणा का एक ऐसा स्रोत है जिसे हम जितनी बार पढें  उतना हीं कम है। गुरुदेव के प्रवचनों में ज्ञान व भक्ति की जो दिव्य धारा बह रही है, उसको आत्मसात कर अपने जीवन को सफल बनाने का हमें प्रयास करना चाहिए।

आज परम पूज्य गुरुदेव की 105 वीं जन्म जयंती एवं 5 वीं पुण्य तिथि के अवसर पर उनके प्रवचनों का संकलन, संत प्रसादी भाग-12 के डिजिटल प्रकाशन को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अत्यंत हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस संत प्रसादी में पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों को लेख के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन प्रवचनों को संकलित करने और लेख के रूप में सम्पादित करने का जो महत्वपूर्ण योगदान ग्वालियर के श्री आदर्श सक्सेना जी ने दिया है, उसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं।

आशा है की पाठकगण हमारे इस प्रयास से लाभान्वित होंगे।

डा. शक्ति कुमार सक्सेना

# विषय-सूची

1. चुनरी में लागा दाग .....1
2. गुरु के आदेशों का पालन और चरित्र निर्माण से आत्म साक्षात्कार संभव है .....8
3. गुरु से प्रेम और गुरु की भक्ति से आत्मा का साक्षात्कार.....12
4. कोई साँस सुमिरन से खाली न जाय .....20
5. गुरु भक्ति के साधन और स्वरूप .....27
6. इच्छा-कर्म –संस्कारों का फल और इससे मुक्ति का साधन .....32
7. नियमित साधना का महत्व .....37
8. पर दोष दर्शन मत करो, मत सुनो .....42
9. परमात्मा कैसे मिलें ? .....48
10. मन की स्थिरता में सफलता .....53
11. सर्वभूतों के प्रति कृतज्ञता -5 यज्ञ.....56

.

# चुनरी में लागा दाग

**“लागा चुनरी में दाग, छुपाऊं कैसे, घर जाऊं कैसे**
**अब जाके बाबुल से नज़रें मिलाऊँ  कैसे, घर जाऊँ कैसे....**

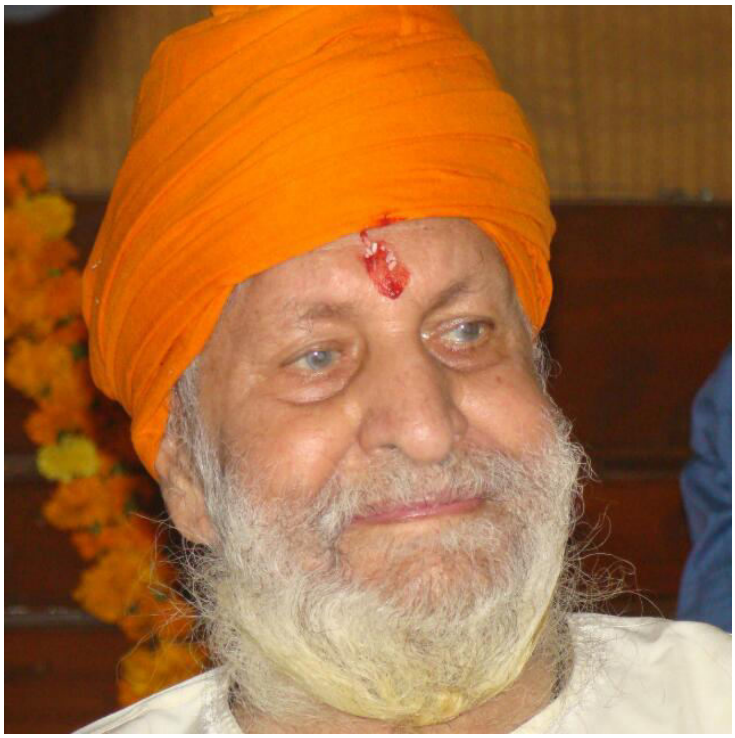

इस भजन में हमारें जीवन की सत्यता का बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया गया है। जब प्रभु कृपा से जीव इस लोक में आया अर्थात आत्मा ससुराल में आई तो यह विश्वास माता-पिता को दिया गया की की उसकी चित्त रूपी चुनरी पर जितने दाग अर्थात संस्कार हैं उनको मैं साफ़ करुँगी। जीवन का लक्ष्य है, निर्मल होना। गंग नीर की तरह निर्मल होना। जीव  को  गंग नीर की तरह पवित्र होना है। माया के कितने ही थपेड़े लगें, उत्तेजना मिले, प्रतिकूल-अनुकूल परिस्थितियां आयें परन्तु हमारा चित्त अडोल एवं निर्मल रहे। हमारे जीवन में रस रहे, आनंद रहे। हमारे व्यवहार से सबको सुख पहुंचे। जीवन में गंग नीर की तरह निरंतर प्रवाह रहे। अतीत के लिए कोई खेद नहीं, भविष्य की कोई चिंता नहीं। प्रभु के, भगवान शिव के, एकरस समता- स्वरूप का सुख निरंतर जीव  मांगता रहे। उसी सुख, शांति में निरंतर रहे। जो हमारे भीतर होगा वही बाहर निकलेगा। हमे संसार के सब पदार्थ उपलब्ध हैं, परन्तु हमारे भीतर में आनंद नहीं है,शान्ति नहीं है क्योंकि हममे में गंगा जल जैसी पवित्रता नहीं है। हमारे भीतर में दाग है, हमारे संस्कार हैं , हमारी वृत्तियाँ हैं, इच्छाएँ हैं। जब हमारी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती तो हमें निराशा होती है। निराशा ही सब दुखों का बीज है। इससे ही क्रोध आता है। इर्ष्या उत्पन्न होती है। इसी के कारण सब लड़ाई- झगड़े होते हैं। हमारा चित्त हमेशा क्षुब्ध, असंतुष्ट, अतृप्त , अशांत रहता है। यह दाग कैसे मिटे ? चित्त कैसे निर्मल हो ?

प्रश्न है की जीव इन दागो से, इन संस्कारों से, इस मलीनता से कैसे मुक्त हो। वह किस प्रकार से मोक्ष हो। वह किस प्रकार से मोक्ष को, निर्वाण को, कैवल्य को, स्वतंत्रता को, प्रेम को, आनंद को, प्राप्त हो ? यह सब एक ही बात हैं। केवल नाम ही भिन्न-भिन्न हैं। हमारी आत्मा

को परमात्मा में लय हो जाना है। यदि परमात्मा की इच्छा होगी तो वह आपको संत बनाकर संसार के उद्धार के लिए भेज देगा। यह लय अवस्था, सदगति, आत्म गति है। दूसरा पुनर्जन्म है। इसको सुफिओं में कहते है फना के बाद बका। फना में तो अपने आप को ख़त्म कर देना है और लय हो जाना है। यदि प्रभु की इच्छा है तो उसी में समाये रहना है। यदि प्रभु की इच्छा है की संसार की सेवा करनी है तो बका ( पुनर्जन्म ) में संत या गुरु के रूप में परमात्मा नर देह में आता है। वो मोक्ष पद को प्राप्त किये होता है। वो ही महान व्यक्ति गुरु कहलाने लायक होता है, वो ही संसार का भला करता है, सेवा करता है।

तो इस वक्त प्रश्न यह है की ये दाग मिटे कैसे ? इसकी प्रेरणा हमे स्त्री जाति से लेनी है। स्त्री जाति का जीवन तपस्या का जीवन है, साधना का जीवन है। विवाह होने पर एक कन्या अपने माँ बाप का घर छोड़ कर नए घर ( पति के घर ) चली जाति है। वह अपने नए घर में इस तरह हो जाति है जैसे वह वर्षों से इसी घर में रह रही हो। माता-पिता के घर से अब उसका उतना मोह नही रहता जितना पहले था। कितना त्याग है , कितना सन्यास है ? ऐसा पुरुष नहीं कर पाता। वह नहीं कर सकता, असमर्थ है। कहते हैं मोह का त्याग करो परन्तु पुरुष नहीं कर पाता। स्त्री जाति में वह शक्ति है। इसलिए स्त्री को माँ का रूप, शक्ति का रूप मानते हैं। वह दृढ संकल्पी होती है, तुरंत ही मोह का त्याग कर देती है। माँ-बाप, भाई- बहन सब का मोह त्याग कर अपने आप को नए घर में समर्पित कर दिया। तन मन धन अपना जो कुछ भी था सब कुछ समर्पण कर दिया। पुरुष ऐसा नहीं कर सकता। एक तरफ त्याग एक तरफ समर्पण। इस चुनरी में जो दाग लगे है उनको साफ़ करने के, इश्वर प्राप्ति के, त्याग और समर्पण ये हीं साधन हैं।

जहां जहां यह मन फंसा हुआ है, हमारा चित्त फँसा हुआ है, वहाँ से इस मन को स्वतंत्र कराना है। वहां से मोह-मुक्त कराना है और प्रभु चरणों में लगाना है। यह कहने से ही नहीं लग जाएगा। इसके लिए सद्गुणों को अपनाना होगा। बिना सद्गुणों को अपनाए हुए हमारी मुक्ति नहीं हो सकती। हमारे यहाँ कन्या की, स्त्री-शक्ति की पूजा होती है क्योंकि उसमें सद्गुण है, प्रेम, करुणा,दया, कोमलता, सहनशीलता, सेवा के सद्गुण हैं। यही भक्ति का साधन है की प्रभु नके चरणों में अनुराग हो, परन्तु आशा अपेक्षा कुछ न हो। केवल एक ही आशा हो कि किसी प्रकार हमारा प्रियतम परमात्मा प्रसन्न हो। हम जब तक इन सद्गुणों को नहीं अपनाएंगे हमारी चित्त की चुनरी के दाग, यानि हमारे चित्त की मलिनता, अवगुण व संस्कार, कभी नहीं मिट सकते।

दु:ख की बात है कि कई वर्ष हो गये हमे साधना करते परन्तु हमारे में परिवर्तन नहीं आया। यह क्या बात है ? बात बड़ी स्पष्ट है। हम जानते हैं की हमारे में जो ईश्वरीय गुण

छिपे है, हम उनका विकास नहीं करते। स्त्री और पुरुष दोनों को चाहिए की वे अपने गुणों का विकास और विस्तार करें। साधना करते हुए हमे इतना समय हो गया परन्तु हमारे में परिवर्तन आ हीं नहीं रहा। चित्त में जो दाग है वे और गहरे होते जा रहे है। इर्ष्या बढती चली जा रही है। हमे यह भी पता है कि मृत्यु नजदीक है, पता नहीं कि किस समय मृत्यु आ जाये।

हम साधना कर रहें है, हमे कुछ-कुछ अनुभूति भी होती है। परन्तु हमारे चित्त की मलिनता दूर नहीं होती। इसका क्या कारण है ? हम लोग दो प्रकार के रास्ते चलते हैं। एक तो यह कि पहले प्रभु की कृपा,गुरु की प्रसन्नता प्राप्त कर लें। तब चित्त को निर्मल करने का प्रयास करते हैं। दूसरा रास्ता है कि पहले चित्त को निर्मल करते है, फिर इश्वर की कृपा के भिखारी बनते हैं। दोनों में कोई अंतर नही है। आप सब जाने-अनजाने में दोनों हीं रास्ते अपना रहे है। परन्तु स्थिति वहीं की वहीं है। हमारे ये दाग कब और कैसे मिटें, हमे इसकी चिंता करनी चाहिए।

लोग-बाग़ कहते है की हमारा मन स्थिर नहीं होता, एकाग्र नहीं होता। इसकी कुछ चिंता करने की जरुरत नहीं है। प्रभु से प्रेम करें और देखें कि उसमें प्रगति हो रही है या नहीं। मैं देखता हूँ कि उसमें प्रगति के बजाय हम उलटे रास्ते पर जा रहे हैं। हमसे त्रुटियाँ हो रहीं है, हमारे प्रेम में कमी आती जा रही है। जिसके भीतर में प्रेम उत्पन्न हो गया, प्रेम प्रविष्ट हो गया उसको कुछ करने-धरने की जरूरत नहीं। सब राग द्वेष मिट जायेंगे । फिर मन अप्रयास ही स्थिर हो जाएगा, एकाग्र हो जाएगा। इसके लिए रोइए, इसके लिए साधना करिए। हमे अपने कन्याओं, स्त्री-शक्ति के गुणों को अपनाकर इश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करनी है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं है अपनी चुनरी के दाग मिटाने के बीच का रास्ता भी है, उसको भी अपनाना चाहिए। कभी-कभी सप्ताह या महीने में एक बार, बैठ कर सोचना चाहिए कि मैं कहाँ हूँ ? मेरे चित्त में जितने गुण-अवगुण (दाग) थे उनमें कुछ कमी आई है या उनमें कुछ बढ़ोत्तरी हुई है। यह लेखा जोखा लेना चाहिए, विचार करना चाहिए, स्व-निरीक्षण करना चाहिए। ऐसा हीन भावना से न करें। प्रभु का आसरा ले कर करें- हम भले है या बुरे हैं, प्रभु तेरे हैं। सुमति,सद्बुद्धि , विवेक, वैराग, दृढ संकल्प के लिए प्रभु से प्रार्थना करें। स्व-निरिक्षण करते हुए जो बुराइयां हममे दिखें, उनको दूर करने के लिए हम प्रयत्न करें। उन त्रुटियों को प्रेम रूपी यज्ञ में अर्पण कर दें। इधर से हमारा दृढ संकल्प हो उधर से प्रभु का आशीर्वाद मिले, यह प्रयत्न करो। अपनी शक्ति भी लगाओ और प्रभु की कृपा के लिए प्रार्थना भी करो । दोनों को अपनाना चाहिए। केवल एक को अपनाने से प्रमाद आ जाता है। यदि केवल कृपा प्रसादी के लिए प्रार्थना करेंगे तो प्रमाद आ जाएगा और यदि केवल अपना दृढ संकल्प हीं लेंगे,इश्वर की कृपा नही लेंगे तो अहंकार आ जायेगा। इसलिए दोनों को अपनाना चाहिए।

हम जानते है कि हममें ये बुराइयां हैं। हमारे भीतर से भी आवाज आती है कि भले मानस ये क्या कर रहे हो ? फिर भी अपने अहंकार के कारण हम कहते है कि देख लेंगे, फिर नहीं करेंगे, सारा संसार ऐसा करता है, मैं ऐसा क्यों न करूँ ? किन्तु इश्वर प्राप्ति के लिए इस प्रकार के तर्को से काम नहीं चलेगा। हमें सद्गुणों को तो अपनाना ही पड़ेगा। प्रेम हीं इश्वर है, इश्वर हीं प्रेम है। हमे इन सद्गुणों को अपनाते हुए इस प्रेम सागर में स्नान करना है। प्रेम रूप हो जाना है जहां किसी प्रकार का विभाजन नहीं है। जहां "मैं" और "तू" है, वहीं झगड़े होते है यह "मैं" और "तू" खत्म हो जाएँ तो सारा विश्व प्रभु में लय हो जाए, सतयुग बन जाए, किसी प्रकार का झगड़ा, इर्ष्या-द्वेष न रहे। तो हमे सद्गुणों को अपनाते हुए इस प्रेम रूपी सागर में स्नान करना है।

यह एक क्षण में नही होता। हम बार-बार इस आयाम में प्रवेश करेंगे, बार-बार हमारे संस्कार हमे बाहर खींच लायेंगे। हम बार-बार भीतर स्नान करने के लिए जाएँ। इसलिए भगवान् कहते हैं कि वैराग अपनाए पहले विवेक बुद्धि अपनाएँ। इससे वैराग सध जाएगा। इसका बार-बार अभ्यास करें एवं इश्वर के साथ अनुराग करें। अनुराग निरंतर नहीं होता और उसमें भी हम गिरते हैं। उसके लिए भी बार-बार अभ्यास करें। गिरेंगे फिर उठेंगे, फिर गिरेंगे फिर उठेंगे। हमारा मन प्रभु के चरणों में से उचटता है लेकिन उसे फिर प्रभु के चरणों में लगाओ। प्रभु के चरणों में बैठकर रोओ। मन का स्वभाव है, इसकी आदत है, यह फिर हटेगा। फिर प्रभु के चरणों में लगाओ। बार-बार लगाओ। इसी का नाम अभ्यास है। खाते-पीते , सोते-जागते, बातें करते हुए , यहाँ तक कि किसी से झगडा करते हुए भी, प्रभु की याद हो। प्रभु की याद होगी, तो लड़ाई झगड़ा होगा हीं नहीं। तो प्रभु के स्वरूप की, उसके गुणों की स्मृति होनी चाहिए। हम प्रभु की, अपने इष्ट देव की, स्मृति तो करते है, उनके गुणों की स्मृति नहीं करते। यह हममे कमी है। हम जितना प्रभु का गुणगान करेंगे, उतनी हीं सरलता हममे आएगी। वो गुण धीरे-धीरे हममे समा जायेंगे।

प्रभु करुणासागर है, दयानिधि है, सबका पालन पोषण करता है। हम प्रभु की उपासना करते है और प्रभु के गुणों को नहीं अपनाते। यह कैसी पूजा है ? यह कैसी साधना है ? हम जड़ समाधि पर ज्यादा जोर देते है कि मन स्थिर हो जाए। केवल इतने से कुछ नही होगा। यह देखिये की प्रभु के गुण हमारे में विकसित हो रहे है ये या नहीं ? हमारी जिव्हा में, वाणी में, मधुरता आ रही है या नही। क्या हमारी वाणी, हमारे शब्दों के कारण दूसरों को दुःख पहुचता है ? यदि पहुँचता है तो हम प्रभु से कोसों दूर हैं। प्रभु तो मधुरता के सागर हैं।

लोग बाग़ पूछते है की साधना कैसे करना है ? साधना यही है कि हमे अपने जीवन को ही साधना का रूप देना है। केवल आँख बंद करके बैठना ही साधना नहीं है। साधना का अंतिम रूप कैसा होता है इसको स्वामी रामदास जी इस प्रकार समझाते हैं कि जैसे

अगरबत्ती या मोमबत्ती होती है, वो स्वयं जलती है और संसार को सुगंधी और प्रकाश देती है। इसी प्रकार से साधना का अंतिम लक्ष्य अच्छा व्यवहार करते हुए अपने आप को ख़त्म कर देना है। जीवन रूपी साधना करते हुए यह हमारा सहज स्वभाव यानि सहज स्थिति बन जानी चाहिए। समाधि भी मन का रूप है। यानि समाधि में गुण नहीं है। यह तो एक ऐसा पुष्प है जिसमें सुगंधी नही है। समाधी भी एक वृति है। हम रोज़ प्रगाढ़ निंद्रा में सोते है। क्या वह समाधि नही है ? क्या उस समाधि से हमारे में कोई परिवर्तन आ जाता है ? सिवाय इसके की शारीर कुछ  हल्का हो जाता है। डाक्टरी उसूल से सोना उचित है परन्तु उससे भगवन तो नही मिलते। चेतन समाधी, गुणों से पूरित समाधि, प्रेम से पूर्ण समाधि, ज्ञान समाधि इनसे इश्वर मिलता है।

गुरुदेव आप सब का कल्याण करें। आप सब का जीवन मंगलमय हो।

# गुरु के आदेशों का पालन और चरित्र निर्माण से आत्म-साक्षात्कार संभव है

मैं बार-बार कहता हूँ व् मेरा निजी तजुर्बा है कि गुरु की कृपा हो, परिस्थितियों की भी कृपा हो परन्तु बिना चरित्र निर्माण के हम अध्यात्मिकता के पूर्ण शिखर पर पहुँच जावें, यह नही हो सकता। हमें तब तक सफलता नहीं मिलेगी जब तक हमारा चरित्र निर्माण नहीं हो । पूज्य लाला जी महाराज का कहना था कि हमारा चरित्र निर्माण हो ही नही सकता जब तक कि हम माया में फँसे है यानि हम अपने शारीर, मन और इन्द्रियों के अधीन है, बुद्धि की चंचलता में फँसे हुए हैं। यदि हमें शुद्ध विवेक अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है, तो कोशिश करें, गुरु का सत्संग प्राप्त कर के उनके जीवन का अनुसरण करें। जिस तरह भी हो इसी जीवन में अपना आचरण ठीक करें तथा अपने चित्त पर जितने भी संस्कार विकार पड़े हुए हैं उनसे मुक्त हों। जब तक हमारा चरित्र निर्माण नही होगा, चित्त विकृति-शून्य नहीं होगा, तब तक हमारी साधना में प्रगति नही होगी।

हमारा लक्ष्य तो यह है की आत्मा में हमारी रसाई यानि स्थिति निरंतर हो जाए। एक क्षण भर भी हम आत्म-स्थिति की सतत अवस्था से इधर उधर न हटें। जो आत्मा के गुण हैं उनसे हमारे भीतर में इस प्रकार की शक्ति आ जावे कि हमारा व्यवहार ही वैसा बन जाये। प्रत्येक कर्म स्वभाविक रूप में हो, बिना प्रयास हो। यदि हमे प्रयास करना पड़ता है तो अभी हमारी स्थिति पूर्ण नहीं हुई है। हमे अभी पूर्ण सफलता नहीं मिली है। लालाजी महाराज का आदेश है की इतनी ऊँची हालत पर पहुँच कर भी हम अपने उपर तब तक विश्वास न करें जब तक आपके भीतर आत्मा के वो गुण प्रकट नहीं होते जो शास्त्रों में लिखें हैं या हमारे गुरुजनों ने

हमे बताएं हैं। वो गुण स्वभाविक ही, अप्रयास हीं हो और हम उन गुणों का विस्तार करें, विकास करें। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक हमे अभ्यास नहीं छोडना चाहिए। चित्त की जो वृत्तियाँ है उनसे जब तक हम मुक्त नहीं होते और हमारा आचरण निर्मल नहीं होता तब तक जीवन का जो लक्ष्य है उसमे हमें सफलता प्राप्त नहीं होगी।

## निर्लिप्त सहज सम अवस्था

हम सब में अपना स्वरूप, आत्म स्वरुप या इश्वर-स्वरूप देखें। भीतर में जो भी परिस्थिति बने वह बिना प्रयास के हीं हो। उसी को सहज अवस्था कहते है। उसमें कोशिश न करनी पड़े। जो इश्वर के गुण हैं वो स्वतः ही हमारे व्यवहार में प्रकट हों। जैसे इश्वर स्वतंत्र है, वैसे ही हम हों। जैसा गुरु है अथवा इश्वर है हमें वैसा हीं बन जाना है। हम जब तक ऐसे नहीं बनते तब तक हमारी साधना अपूर्ण है। हम फिर जन्म मरण के चक्कर में आ जायेंगे। परमार्थ के पथ पर कभी भी संतुष्ट नहीं होना चाहिए , हमें कभी थकावट नही आना चाहिए। हाँ, दुनिया के पथ पर थकावट हमें आ जानी चाहिए। साठ साल की उम्र हो गयी, अब आप वानप्रस्थ ले लीजिये। 75 साल की उम्र हो गयी, अब सन्यास ले लीजिये। संन्यास का मतलब है – जहाँ-जहाँ हमारा मन फंसता है वहाँ-वहाँ से उसको स्वतंत्र करके इश्वर के चरणों में लगाओ। अपनें शारीर से तथा ऐसी सभी चीजों से पूर्ण वैराग हो। किसी वस्तु, किसी भी चाह , किसी मनुष्य के प्रति कोई आसक्ति न हो। पूर्ण सन्यासी गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। यानि अपना जितना मोह है, इच्छाएँ और अज्ञान है, उस सबको अग्नि में जला देतें हैं। सन्यासी का नाम भी बदल दिया जाता है। हमारे संत मत में दुनिया को भोगते हैं और साथ-साथ दुनिया का त्याग भी करते जाते है। दुनिया को भोगते है और इश्वर की याद में रहते है। गुरुमहाराज का आदेश था की दुनिया को भोगो परन्तु इश्वर की याद में। सभी अवस्थाओं में इश्वर का स्मरण करो। अपना सब काम और व्यवहार उसकी स्मृति में करो। ऐसी स्थिति में आप कोई गलत व्यवहार नहीं करेंगे।

## जानते है पर वैसा आचरण नही करते

हम जानते है की इश्वर सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, वह हमारी सारी चाल- ढाल को देखता है, हमारे व्यवहार को देखता है, परन्तु चूँकि हमारे भीतर में इश्वर के या गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा नहीं है, तभी तो हम बुरे काम कर बैठते हैं। गलत काम होते क्यों हैं ? इसलिए क्योंकि हमारे भीतर में इस विश्वास का आभास हीं नहीं है कि इश्वर हमें देख रहा है। केवल एक व्यक्ति की नहीं, बहुतों की, अधिकतम लोगों की हालत है। हम इश्वर का केवल नाम हीं लेते हैं। कहते हैं ,

हाँ साहब हम तो इश्वर की पूजा करते हैं। वास्तव में पूजा करता कोई नहीं है। यदि हम पूजा करते है तो हमसे बुरे कर्म कैसे और क्यों होते हैं ?

तो कोशिश करे, साधना भी करें , समाधि अवस्था में पहुँचने की भी कोशिश करें , जैसा कि हमारे गुरुजनों ने हमे आज्ञा दी है , सिखाया है। चाहे जहां से भी दीक्षा मिली हो , आपके इष्ट देव जैसा फरमाएं , उसी विश्वास के साथ , श्रद्धा से साधना करें। यह नहीं कि सत्संग में गये , दीक्षा ले ली , कुछ दिनों के बाद कोई और महात्मा आये , उनसे भी दीक्षा ले ली। ऐसा करने वाला साधक कभी भी सफल नहीं हो सकता। एक के बन कर रहो। जैसा भी वह रास्ता बताये उसका पक्के संकल्प के साथ पालन करो। तनिक भी आपको उसमें संकोच न हो , संदेह न हो। यही संतो की अमृत वाणी है। अपनें इष्टदेव के आदेशों के अनुसार हीं अपना जीवन बनाने की कोशिश करो। इसी में कल्याण है आत्मसाक्षात्कार एवं परमात्मा से मिलने की सम्भावना है। अपना जीवन दांव पर लगा दो। जीवन का भी बलिदान देना पड़े , तो भी समझिये की परमात्मा आपको सस्ते में हीं मिला।

## गुरु की सेवा का सर्वोत्तम रूप

सेवा कई प्रकार की होती है। हाथ-पाँव की सेवा होती हा , धन से सेवा होती है परन्तु मन की सेवा बहुत ऊँची है। यानि जो कुछ भी आपके इष्टदेव कहें , उसमें तनिक भी संदेह न लावें। उनकी बातों को यह समझें यह इश्वर का हुक्म है , और उनकी आज्ञा का पालन करें। यदि यही बात ध्यान में रखें और जो भी गुरु महाराज के आदेश है , उन्ही का पालन करते चलें जाए , तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आत्मा का साक्षात्कार दूर नहीं है। परन्तु हम ऐसा करते नहीं हैं। गुरु की बातों की तरफ ध्यान नहीं देते , अपनी मनमानी करते है। जब हमने दीक्षा लेते वक्त तन, मन, धन देने का वचन गुरु को दिया तो फिर हमारा इन चीजों से मोह क्यों है ? परन्तु क्या है कोई ऐसे व्यक्ति जिसको अपने शारीर, अपनी धन-संपत्ति या स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों के प्रति मोह न हो , या जिसने अपने विचारों को छोड़ दिया हो। आपसे बारम्बार यही अनुरोध करूँगा की जो आपके इष्टदेव का आदेश हो उनके पालन में कभी भी संकोच नहीं करना चाहिए। उनका पूरा पूरा पालन या अनुसरण करना चाहिए। यही सर्वोत्तम गुरु सेवा है। विश्वास मानिए इस सेवा के द्वारा आप आत्म साक्षात्कार करके अपना जीवन सफल कर लेंगे, मानव जीवन को सार्थक और धनी कर सकेंगे।

गुरुदेव आप सबका कल्याण करें।

# गुरु से प्रेम और गुरु की भक्ति से आत्मा का साक्षत्कार

परमात्मा नें मनुष्य को अपने जैसा बनाया है अर्थात मनुष्य में वे हीं गुण हैं जो परमात्मा में हैं। अंतर केवल मात्रा का है। प्रभु तो पावन स्वरूप है। दुःख-सुख से निरंतर अछूते रहते हैं। शिव भगवान की तस्वीर देखिये उनके शीश से गंग-नीर बहता रहता है , प्रेम और ज्ञान बहता रहता है। उनके व्यवहार में कोई झंझट नहीं , किसी की बुराई नहीं। सबकी सेवा, सबको ज्ञान, प्रेम और आनंद प्रदान करते रहते है।

हम सब क्यों भीतर से दुखी हैं ? जो सत्संग में नहीं आते , उनके लिए तो कुछ कहना हीं नहीं चाहिए। परन्तु जो सत्संग में आते हैं और जो इस रास्ते पर चल पड़े हैं , वे क्यों दुखी रहते है ? कारण इसका एक हीं है। जो दुःख-सुख से अछूता है , वही हमारी आत्मा है। हमारी आत्मा हमारे भीतर में है। आपके उपर आवरण है- शारीर का , प्राणों का, खुदी का , आनंद का आवरण। दुःख-सुख को कौन अनुभव करता है ? हमारा यह अहंकार , मन , बुद्धि मिलकर। तो जब तक हम निजस्वरूप में , आत्मरूप में , स्थित नहीं होते , तब तक हमे सुख-दुःख का अनुभव होना स्वाभाविक ही है। इसमें किसी का दोष नहीं है।

जो व्यक्ति आत्म-स्थित रहता है उसको दुःख-सुख व्याप्त नहीं होता। इसका साधन क्या है ? आत्मा का साक्षात्कार करना या अपने स्वयं -रूप में स्थित होना या प्रभु के चरणों में रहना – इसके कई साधन हैं। भक्ति का साधन , प्रेम का साधन , योग-अष्टांग योग का साधन , वेदांत का साधन, ज्ञान का साधन। इश्वर के प्रति समर्पण के भी कई साधन है।

हमारे यहाँ प्रेम और भक्ति का साधन है। इसी में ज्ञान भी आ जाता है। स्वामी राम दस जी लिखते हैं की केवल प्रभु का नाम लेने से ही यह स्थिति आ सकती है। वह केवल

प्रभु का नाम लिया करते थे – "ॐ श्री राम, जय राम, जय जय राम "। उन्होंने बड़ी दृढ़ता से लिखा है कि आत्मा का साक्षात्कार करने का मैंने कोई अन्य साधन नहीं किया। केवल नाम जाप से ही मुझे यह महान अवस्था प्राप्त हुई है। उनके कहने का मतलब यही था कि व्यक्ति केवल नाम के उच्चारण से ही आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है , परमात्मा के दर्शन प्राप्त कर सकता है। परन्तु हम भी तो नाम लेते हैं , हमें साक्षात्कार क्यों नहीं होता ? हम तो अभी पहले चरण में ही नहीं आये हैं। हमारे में प्रभु के लिए कोई प्रेम नहीं है , उसमें कोई रूचि नहीं है। नाम के सुमिरन के साथ जब तक प्रभु के लिए तडप नहीं होगी , तब तक कितना भी नाम लेते रहिए तोते की तरह , कुछ भी नहीं बनने का। हम जिसका नाम ले रहे है उसके दर्शन के लिए तडप होनी चाहिए , उसके प्रति हमें श्रद्धा और विश्वास होनी चाहिए। संसार में आपके जितने भी स्वजन – सम्बन्धी हैं, उन सबके साथ यथा योग्य व्यवहार तो करना है परन्तु हमें इश्वर से अधिक किसी से भी प्रेम नहीं करना है। हमे निरंतर इश्वर या गुरु की याद बनी रहे ,वह भी प्रेम से , श्रद्धा, सेवा, विश्वास के साथ। जैसे सरल बच्चा , नवजात शिशु, माँ की गोद में संतुष्ट रहता है , उसी प्रकार हमको प्रभु के चरणों में रहना है। जो व्यक्ति इस तरह प्रभु का नाम का स्मरण करता है , उसे प्रभु के दर्शन हो सकते हैं। अपनी आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है तथा संसार के जितने दुःख-सुख है उनसे वह व्यक्ति मुक्त हो सकता है। ज्ञान कहता है मुर्ख ! तू शारीर नहीं , तू तो आत्मा है। सुख-दुःख तो आत्मा को नहीं होता। पर ज्ञान भी थोथा ज्ञान नहीं होना चाहिए , वास्तविक ज्ञान होना चाहिए। यानि मनुष्य को विज्ञानी होना चाहिए, ज्ञान की अनुभूति होनी चाहिए। ' मैं आत्मा हूँ ' इसकी अनुभूति होनी चाहिए। तभी वह कह सकता है ' अहम ब्रह्मास्मि '।

हमारी स्थिति अज्ञान की है। हम भूले हु है। हमारे में सच्ची प्रीति नहीं है । हम प्रेम साधन करते हैं , थोडा बहुत ज्ञान को समझते है मगर हम विज्ञानी नहीं हैं। हम तो किसी भी रास्ते पर सही तरीके से या गम्भीरता से नहीं चल रहे हैं। हम जब भी साधना करते है मौन में बैठते हैं तब हम अपने आपको पूर्णतयः प्रभु के चरणों में , गुरु के चरणों में समर्पण कर देते हैं। पर जो वास्तव में करना चाहिए वह करते नहीं। शरीर भी आपका मन भी आपका, संसार की जितनी भी वस्तुए हैं, जिन्हें लोग कहते है मेरी है', वो भी सब आपकी ( इश्वर की)। तो जब हम पुर्णतः सब कुछ समर्पण कर देते है तो फिर हमारे भीतर में आसक्ति क्यों रहती है ?

' यह सब मेरा है ' यह विचार बना रहता है। तो हमारा यह झूठा समर्पण है। गीता का यही सार है। जो व्यक्ति मोहासक्ति को छोड़ देता है , पुर्णतः भगवन के चरणों में समर्पण कर देता है उसको कुछ करने की आवश्यकता हीं नहीं।

यह प्रेम साधना है। यदि आपका प्रेम गुरु के साथ है तो आपको कुछ करने की जरुरत हीं क्या है ? सभी गुरु का है तो फिर दुःख-सुख किसका होता है ? भीतर में बैठा हमारा अहंकार केवल उपर-उपर से कहता है , परन्तु , वास्तव में यह समर्पण करता नहीं है , इसलिए दुखी है। संक्षेप में , सब दुखो की निवृति का एक ही साधन है कि हमें अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाए। जब तक ऐसा नहीं होता दुःख-सुख की अनुभूति तो होगी हीं। हम इस जन्म मरन के चक्कर से कभी नहीं छूटेंगे। तो हम सबको अपने प्रति गम्भीर होना होगा। जिस रास्ते पर हम चल रहें हैं उसके और निज स्वरुप के प्रति हमे गम्भीर होना होगा कि हमारा लक्ष्य क्या है ? , हमारा आदर्श क्या है ? और उसकी प्राप्ति के लिए हम क्या कर रहे है ? आपका हमारा दोष नहीं है। अर्जुन को भी कठिनाई हुई थी भगवन के चरणों में समर्पण करने के लिए। हमारी वृति हमारे पिछले संस्कार हीं ऐसे हैं कि जैसा समर्पण होना चाहिए वैसा हम नहीं कर पाते। इस समर्पण की तयारी के लिए हमें पहले धर्म का आश्रय लेना होगा। अपने जीवन को अर्थात अपने शरीर, मन ,बुद्धि को गुरु के आदेशों के अनुसार स्वस्थ रखना है। जिन्होंने गुरु दीक्षा नहीं ली है उनको चाहिए कि धर्म शास्त्र के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें। प्रकृति के नियमों का पालन करें। धर्म के जितने नियम हैं अर्थात यम, नियम , सत्य बोलना , झूठ नहीं बोलना , हिंसा नहीं करना , सबसे प्रेम , सबकी सेवा आदि, इन सबका पालन करना चाहिए। जिसका जीवन धर्म का नहीं है उसका परमार्थ नहीं बन सकता। यदि धर्म बन भी जाये परंतु यदि गुरु के साथ या इश्वर के साथ प्रेम नहीं है , उधर रूचि नहीं है , लगाव नहीं है , भाव नहीं है तब भी व्यक्ति कोरा हीं रह जाता है , खली रह जाता है। यह रास्ता किसी तकनीक का नही है। यह रास्ता सरलता का , नजाकत का रास्ता है। इसमें विशेष गुणों की आवश्यकता है।

महापुरुष अपने आपको कहते है ' नानक गरीब ढहपयो द्वारे ' समर्पण कैसे होता है ? अपने आप को नम्र से नम्र , नीच , गरीब , आजिज बनाते हैं। हमारे में वह आज़िज़ी कहाँ , वो गरीबी (दीनता) कहाँ है ? भाईयों के साथ , संसार के साथ , हमारा व्यवहार नम्रता का नहीं कठोरता का है। जिस व्यक्ति के भीतर कठोरता है , वह इस रास्ते का अधिकारी नहीं है चाहे वह ज्ञान साधना करता हो या भक्ति साधना करता हो। रास्ते दोनों ही ठीक हैं। महर्षि रमण कहा करते थे कि जिनकी जैसी वृत्ति होती है , जैसे पिछले संस्कार होते है उसके अनुसार व्यक्ति अपनी साधना अपना लेता है। उससे कहो की अमुक साधना करो , वह कर हीं नहीं पायेगा। तो गुरुजन जैसा जिस जिज्ञासु का स्वभाव होता है वैसी साधना उसको बतला देते है। एक हीं साधना सबको नहीं करनी। हमें अंतर में गुरु के दर्शन करने हैं , आत्मा का साक्षात्कार करना हैं , या इश्वर के दर्शन करनें हैं – तीनों बातें एक हीं है।

इस आदर्श की प्राप्ति के लिए हमें गम्भीरता से विचार करना चाहिए। पहले साधना में रूचि लगाइए। संसार के सब भोगों सब सम्बन्ध , सब विचारों को एक तरफ रख दीजिये। जिस प्रकार जल से निकाल देने पर मछली तडपती है उसी प्रकार की तडप हममें इश्वर से मिलने की होनी चाहिए। जब तक हमारी ऐसी स्थिति नहीं होती तब तक हमें कुछ प्राप्त करने की आशा नहीं रखनी चाहिए। इससे कम में कुछ नहीं बनेगा। बच्चे, बूढे, नए या पुराने अभ्यासी सबको इसी आदर्श को अपने सम्मुख रखना चाहिए। आत्मा का साक्षात्कार हीं असली प्रेम है। इसी में आनंद है , शांति है।

गुरु महाराज ने एक प्रवचन में बताया है कि गुरु भक्ति कैसे की जाए । गुरु से प्रेम करने से तथा गुरु की भक्ति करने से भी आत्मा का साक्षात्कार हो साकता है , गुरु या परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। पहले गुरु के शरीर की सेवा करते हैं। यह श्री गणेश है। जिस किसी को गुरु की शारीरिक सेवा करने का अवसर नहीं मिला , उसमे सरलता नहीं आएगी । गुरुजन अपनी सेवा नही कराते। शारीर की सेवा बहुत कम कराते है। यदि गुरु की सेवा का अवसर न मिले तो भाइयों की सेवा करो , यह भी गुरु सेवा है। इसके बाद गुरु के , इश्वर के , गुणों को सराहते हैं। हम जितना उसके स्वरुप को , उसके गुणों को सराहेंगे उतना हीं निखार आता चला जाएगा। गुरु महाराज फरमाते थे की जैसे किसी लडकी की नई नई शादी होती है तो वह लडकी हर बात में अपने पति की हीं बात करती है। ससुराल से वापस आने पर भी हरेक बात में पति की हीं बात करती है। रामदास जी नें लिखा है कि अपने इष्ट देव की चर्चा करते रहिये , हर वक्त उसका ध्यान करिए , हर वक्त उसके गुणों को सराहिये।

मैं कई बार कहता रहता हूँ कि वह समाधि जिसमें गुण नहीं है , जिसमें शांति नहीं है, जिसमें संतोष नहीं है, तृप्ति नहीं है निर्मलता नहीं है , वह जड़ समाधी है , आप चाहे कई - कई घंटे आँखे बंद कर के बैठे रहिये। तो गुरु के गुणों को सराहो। इसी को कीर्तन कहते है। प्रभु की कीर्ति करो , उपमा करो। यह जो नौ प्रकार की भक्ति है वह भी इसी में आ जाति है। भक्ति में अर्चना करते है , जल, चावल, पुष्प चढाते है , भिन्न-भिन्न तरके से अपने इष्ट देव के साथ प्रेम का व्यवहार करते है , वे भी हमारी साधना को सफलता की ओर ले जाते है। पहले शरीर की सेवा की फिर गुरु के मन की सेवा की यानि उसके गुणों को सराहा, फिर गुरु की जो ज्ञान की , विज्ञान की स्थिति है उसका अनुसरण करना चाहिए। वे जैसा आदेश दें,श्रद्धा और विश्वास के साथ उसको सही माने , उस पर मनन करें तथा उसको अपने जीवन में में उतारने की कोशिश करें। थोड़े शब्दों में, गुरु के जो गुण है हम उन्हें सराहें और उनकी स्मृति करते हुए उन्हें अपने जीवन में उतारें। समर्पण इसके आगे चल कर होता है , इसके पहले नही होता। इसके लिए तैयारी करनी पडती है। तब हमारी आत्मा गुरु में या इश्वर में लय होती है।

**“ मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।**

**तेरा तुझ को सौंपते क्या लागत है मोर “**

यह बात शब्दों में तो सब कह देते हैं। वास्तविकता होनी चाहिए। ऐसा कहने को तो हम कह लेते हैं पर यह जो मोह और आसक्ति है आसानी से नहीं छूटती। हर प्राणी जानता है की मरने के बाद हमारा कुछ नहीं रहता। तब भी प्रत्येक व्यक्ति में आसक्ति है , प्रत्येक व्यक्ति मोहग्रस्त है यह कैसा समर्पण है ? समर्पण कैसे करें ? इस सबके लिए घबराना नहीं चाहिए। इसके लिए तो तय करना होगा। हाँ, यदि इश्वर कृपा हो तो उस व्यक्ति को कुछ करना नहीं होता। ऐसे व्यक्तियों को महापुरुष अपने साथ लाते है गुरु नानक देव , गुरु अंगद देव जी को अपने साथ लाये। पहली भेंट में गुरु नानकदेव जी ने पूछा “ तुम्हारा नाम क्या है ? “ उन्होंने कहा मेरा नाम है ‘ लहना’ – यानि जिसको किसी से कुछ लेना हो। गुरुदेव ने कहा “ हमे देना है ’। महज ये दो शब्द कहे औए उन्हें सब कुछ दे दिया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस, जो स्वामी विवेकानंद जी को अपनें साथ लाये थे। विवेकानंद जी भागते तो परमहंस जी उनके पीछे पीछे जाते थे। देखिये गुरु शिष्य की कैसी लीला है

इस प्रकार का सम्बन्ध हो तो ठीक है। ऐसे व्यक्ति को कुछ नहीं करना पड़ता। गुरु या परमात्मा की कृपा से हीं सब कुछ हो जाता है। मगर यह कृपा सब पर नहीं होती। इसलिए हम सबको साधना करनी चाहिए। साधना के लिए पहली बात है की साधना में रुची होनी चाहिए , बिना रूचि उत्पन्न हुए आनन्द नहीं आएगा जब तक आनन्द नहीं आता चित्त निर्मल नहीं होगा। जब तक चित्त निर्मल नहीं होता है , आप किसी तरफ नहीं बढ़ सकते।

लोग-बाग़ कहते है कि हमारा मन एकाग्र नहीं होता। मन एकाग्र कैसे हो ? आपकी लग्न कितनी है ? एकाग्रता की विशेष चिंता न करें। प्रेम की चिंता करें कि हमारा गुरु या इश्वर की तरफ प्रेम उत्पन्न क्यों नहीं होता , क्यों नहीं बढ़ता ? हम संसार के व्यक्तियों से , जिनके साथ हमारा व्यवहार है , थोडा बहुत भय रखते हैं। परन्तु इश्वर के साथ हमारा कोई भय भाव नहीं है। अपने मन से पूछिये की क्या हम इश्वर या गुरु का भय रखते हैं ?

इसलिए पहले सत्-गुरु को अपनाइए। इश्वर से प्रेम,व्याकुलता,विरह उत्पन्न करिए। मन एकाग्र होता है या नहीं, यह साधारण बात है। इसकी कई तकनीक है। मन एकाग्र होने में दिक्कत नहीं होती , किन्तु प्रेम उत्पन्न होने में देर लगती है, दिक्कत होती है। जो पुराने अभ्यासी है उन्हें और अधिक समय देना चाहिए इस ओर , क्योंकि उन्हें अपने इस जीवन काल में हीं अपने स्वरूप में या गुरु स्वरूप में या परमात्मा के चरणों में स्थित होना है । सिर्फ

थोडा-थोडा , कभी-कभी प्रकाश देख लेना , या कभी-कभी शब्द सुनाई आ जाये तो शुक्र है , आपका रास्ता गलत नहीं है , परन्तु मंजिल अभी दूर है।

प्रेम ( आत्मा का प्रेम ) आत्मा में स्थित होना चाहिए। तब सब दुखों की निवृत्ति अपने स्वरुप में स्थित होने से या अंतर में गुरुदेव के दर्शन से होगी। यह जितने नाम और रूप दीखते है , सबका नाश होना है फिर भी हम इनमें फँसे हुए हैं क्योंकि हमारा इश्वर के साथ लगाव नहीं है। जैसे- जैसे आप आगे बढ़ते जाए, अपने लक्ष्य को अच्छी तरह समझते जाइए और उसको पाने के लिए जीवन की बाज़ी लगाइए , यही सच्ची साधना है। ॐ।

# कोई साँस सुमिरन से खाली न जाए

प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि उसको ऐसा सुख मिले जिसमें कभी कमी न आये। हर व्यक्ति सुख और आनन्द की तालाश में है। यह प्रत्येक व्यक्ति की वृत्ति है और यह सही भी है। परन्तु मनुष्य अपने संस्करों से मन और माया के कारण दुखी है। कोई भी मनुष्य को देख लीजिये, पढ़ा लिखा हो, पैसे वाला हो, गरीब हो सभी दुखी है। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि जब माया का वेग प्रबल होता है , असामान्यता आ जाती है , तब वो संसार में अवतार लेते है तथा संसार में आकर संसार को सुख प्रदान करते है। यह इश्वर की बड़ी कृपा है कि संसार के उद्धार के लिए , संसार को सुख पहुंचाने के लिए , इश्वर संत-अवतारों को संसार में भेजते रहते हैं। परन्तु व्यक्ति फिर भी दुखी क्यों है ? क्योंकि वह महापुरुषों के आदेशों का पालन नहीं करता। यदि हम उन आदेशों का पालन सच्चे दिल से , इमानदारी के साथ करें तो हमे सुख शान्ति तत्काल मिल सकती है। पांचवे गुरु अर्जुनदेव जी ने बड़ी सरल भाषा में थोड़े शब्दों में हमें रास्ता दिखलाया है।

## " सांसि- सांसि सिमरहू गोविन्द, मन अंतर की उतरे चिंद "

यानि हर वक्त इश्वर का भजन करो, सिमरो यानि उसको याद करो। सरल उपाय है कि हर साँस में यानि हर वक्त इश्वर का भजन करो। कबीर साहब कहते है कि काठ की माला तो सभी जपते है , उसमें कुछ लाभ नहीं होने का। वह हमें सावधान करते हैं कि प्रभु का सिमरन कैसे करना चाहिए , किस प्रकार मन की माला का जाप करें ? मन की माला का क्या अर्थ है? जिसका सिमरन कर रहे हो , उसका क्या स्वरूप है, उसके क्या गुण है। क्यों हम उसका सिमरन करें ? हमें क्यों लाभ नहीं होता ? ईश्वर का नाम सभी लेते हैं। वो किसी भी सम्प्रदाय के हों। परंतु कबीर साहब चेतावनी दे रहे हैं, कि इंसान अपना समय खो रहा है। उसे पता नहीं कि अपने प्रियतम की याद कैसे की जाती है। नवें गुरु कहते है कि परमात्मा की याद इस प्रकार करो जैसे मछली पानी के बाहर आ जाती है तो कैसे तड़पती है। उसके जीवन प्राण निकल रहे होते है। यदि उसे पुनः पानी में डाल दिया जाए तो वह पुनः जीवित हो जाती है। उसी तरह

यदि हम ईश्वर का चिंतन विरह और वैराग्य के साथ करें, ईश्वर को ' सांसि-सांसि-सुमरे ' तो हम भी उस सागर रूपी परमात्मा के साथ तदरूप हो जाएंगे । " तू-तू करता तू भया मुझमें रही न हूँ " । यदि हम बार-बार ईश्वर के गुणों को याद करेंगे तो हमारा भी वही रूप हो जाएगा जो ईश्वर का रूप है । ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, आनन्द का भंडार, सत्यता का स्वरूप है । उसका जीवन क्षणभंगुर , अस्थाई नहीं है, जैसा हमारा है। वो स्थायी है, निरन्तर एक रस है । उसमें ज्ञान है, आनन्द है । यदि हम उस के स्वरूप और उसके गुणों का मन से, विरह और वैराग्य के साथ चिंतन करेंगे तो थोड़े दिनों में हीं हमारे भीतर एक परिवर्तन आ जायेगा, एक क्रान्ति सी आ जाएगी। तो सांसि-सांसि सिमरें– कोई भाव बना लें, जैसा हमारी संस्कृति है । कोई भक्ति-युक्त होकर परमात्मा को भजता है तो कोई सेवक या दास बनकर, कोई पुत्र बनकर, कोई स्त्री बनकर, कोई प्रेमी-प्रेमिका बनकर भजता है। भाव किसी पर थोपा नही जा सकता, यह अपने संस्कारों पर निर्भर करता है। परंतु यदि कोई भाव अभी तक नहीं बना है तो बना लेना चाहिए। सेवक का भाव सर्वोत्तम है। गुरु महाराज कहा करते थे कि इसमें स्वार्थ नहीं है। नवजात शिशु में राग द्वेष नहीं होता । जो कोई भी उसे अपनी गोद में उठाता है, शिशु उसकी गोद में पहुंच जाता है । सबको अपनी मुस्कान देता है। तो इस प्रकार का भाव बनाकर उस प्रभु की याद करें। हमारी संस्कृति में भक्तियुक्त कथा आदि सुनी जाती है। इसका बड़ा महत्व है। गुरुनानक देव ने तो जपुजी साहब में इतना सब लिखा है कि यदि सही तरीके से उपदेश सुना जाए तो सुनने से ही उद्धार हो जाता है।

गुरु अर्जुन देव जी फरमाते हैं कि संसार में जितनी वस्तुएं हैं वे सब अनात्मिक हैं। नित केवल परमात्मा है। तो अनात्मिक वस्तु आसक्तिका त्याग कर के, उनके प्रति कोई आशा मत रखो, उनके प्रति मन में इच्छा मत उठाओ, उनके प्रति व्याकुल न हो । महात्मा बुद्ध ने तो केवल एक हीं साधन लिया है-इच्छा को छोड़ दो । आपका उद्धार हो जाएगा, आपको निर्वाण मिल जायेगा। यह संसार अनित है, , परिवर्तनशील है, क्षणभंगुर है। इसका मोह त्यागना चाहिए। जब संसार का मोह त्यागेंगे तभी तो ईश्वर से प्रेम कर सकेंगे। ऐसा तो हो नहीं सकता कि संसार को भी भोगे और ईश्वर से भी प्रेम करें । इसका तरीका है कि संसार में रहते हुए, संसार का काम करते हुए, ईश्वर को न भूले। यह सन्तमत की विशेषता है। संसार में रहते हुए, इस कीचड़

में रहते हुए, कमल पुष्प की तरह रहें यह सबके लिए बड़ा कठिन है, मगर साधना तो करनी पड़ेगी। ऐसी साधना हम नहीं करेंगे तो हमें सुख शान्ति नहीं मिलेगी।

हमें सावधान रहना चाहिए। जो वस्तु, जो व्यक्ति, जो विचार है जो अनित है उसके साथ हमारा मोह नहीं रहना चाहिए। सागर में जो तरंगें उठती हैं, जो वेग उठता है, उसी प्रकार से हमारे हृदय में भी तरंगें उठती हैं, संकल्प-विकल्प हरदम उठते रहते हैं, इनको छोड़े बिना भीतर में स्थिरता नहीं आ सकती। यह कब छुटते हैं ? राग द्वेष को छोड़ दीजिए। संसार में शांत रहो किसी की प्रतिक्रिया न करो, बुराई भलाई के द्वंदों को छोड़ दो। परन्तु इस का अभ्यास करना पड़ेगा। जो व्यक्ति सच्चे महापुरुष की सेवा में जाता है तो उसका मन उनके चरणों में बैठते हीं उसी वक़्त स्थिर हो जाता है। वह महापुरुष इतना महान, सूर्यों का सूर्य होता है। जो भी कोई उसके पास आता है तो उसकी आत्मिक रश्मियां जो उसके शरीर से निकलती हैं उसके प्रभाव से शिष्य का मन कुछ समय के लिए शांत हो जाता है।

यदि कोई वस्तु ईश्वर से मांगनी है तो महापुरुषों के चरणों के रज की प्रार्थना करो, उसके जीवन का अनुसरण करो। वो जिस रास्ते से चलें हैं उस रास्ते की खाक की पूजा करो। उनके जीवन को अपने जीवन में समाओ। कबीर साहब के शब्दों में " तू-तू करता तू भया मुझ मैँ रही न हूँ "।

गुरु महाराज कहते थे कि यदि कोई विषम परिस्थिति आ जाती है तो उस समय अपने गुरु को, अपने इष्टदेव को याद करना चाहिए और अपने मन को समझाना चाहिए कि ऐसी परिस्थितियों में गुरु क्या करते। मुझे भी वही करना चाहिए। हम रोज़ पढ़ते हैं पर कभी मनन नहीं करते, कभी विचार नहीं करते। प्रार्थना कैसे करें, सुमिरन कैसे करें और सारे दिन की दिनचर्या कैसे करें? आपा छोड़ो, अहंकार का त्याग करो, कर्तापन का त्याग करो। कर्तापन के अहंकार के कारण हम जो कर्म करते हैं उसमें हम फँस जाते हैं।

भगवान कृष्ण ने गीता में अर्जुन को समझाया है कि तू कौन है करने वाला, कर्तापन और उसके अहंकार को छोड़ दें। उस अहंकार और कर्तापन के भाव के कारण हम जो कर्म करते हैं उसमें हम फँस जाते हैं, हम बुराई-भलाई के चक्कर में फंस जाते है भगवान कृष्ण ने गीता में अर्जुन को समझाया है कि तू अपना कर्म कर जो स्वधर्म है, आत्मा में स्थिर हो, निर्द्वन्द

हो । द्वंदों को छोड़ दे । बुराई-भलाई को छोड़ दे, अहंकार को छोड़ दे। कर्म के साथ तेरी आसक्ति न हो और कर्म फल के साथ बन्धनन हो। तो साधक को अहंकार और कर्तापन छोड़ना चाहिए। दीनता अपनानी चाहिए। अहंकार छोड़ना कोई आसान बात नहींहै । हम बातों में कर्म करते हुए सोचते हैं कि दुनियां में मेरे जैसा कोई नहीं मेरी बुद्धि हीं सर्वश्रेष्ठ है। हम सब अपना राग गाते हैं, हम अहंकार में फंसे हैं।

सब महापुरुषों का यही आदेश है कि अहंकार को छोड़ो । तू कौन है करने वाला? तुझ से तो कराया जा रहा है। भगवान भी कहते हैं कि जो कुछ भी हो रहा है, ये तीन गुणों की प्रकृति है, वही कर रही है। परंतु यह प्रकृति भी मेरे हीं आश्रय काम कर रही है। बड़ी कठिनाई से समझ आती है ऐसी बातें। परन्तु तब भी, जैसा पहले कहा है, महापुरुष जिस रास्ते पर चलते हैं, उस रास्ते पर चलो, उनकी चरण रज लो, आपा छोड़ कर दीनता अपनाओ, फिर विनती करो, प्रार्थना करो एक नन्हें बच्चे की तरह। शिशु की तरह, सरलता के साथ सच्चे हृदय से ईश्वर के चरणों मे प्रार्थना करो ।

## " साध-संग अग्नि सागर परहु " ।

यह संसार अग्नि का सागर है, दुखों का सागर है। माया का रूप है, गुणों का रूप है। सब लोग तम,रज और सत इन्हीं रूपों में फंसे हुए हैं। इस भव-सागर इस अग्नि-सागर से तरने का उपाय बताया है कि साधु संग करो। जो सिद्ध-पुरुष है, जो ईश्वर के तदरूप हो गए है, जिन में और ईश्वर में कोई अंतर नहीं है, उनका संग करो। यही साधुपन है, यही सिद्धि है। साधु वह है जो आत्मा परमात्मा का रूप है। जैसे अग्नि के पास बैठे तो हमें गर्मी महसूस होगी, उसी तरह सिद्ध पुरूष के साथ बैठे तो हमारे आचरण में, व्यवहार में, हमारे विचारों में क्रांति सी आ जायेगी। हमारा चित्त शुद्ध, निर्मल हो जायेगा। यही गंगा स्नान है । महापुरुषों का आशीर्वाद लेने के लिए हम उनके चरणों में बैठते हैं। उनके पास बैठ कर क्या करें।

## " हरि धन के भरि लेहु भंडार " ।

उनके शरीर से एक प्रकार की तरंगें ( vibrations ), रश्मियां निकलती है। जैसे सूरज की किरणें निकलती है, इसी प्रकार महापुरुषों के भीतर से आत्मिक रश्मियां आती है। वो महापुरुष इसके

लिए प्रयास नहीं करते, उनकी सहज अवस्था हो जाती है। सिद्ध पुरूष के पास बैठकर क्या मिलेगा ? हरिधन मिलेगा, ईश्वर का प्रेम मिलेगा । हमारी मलिनता दूर होगी। उनके चरणों में बैठकर हम भी अपनी आत्मा के करीब होजाएंगे। हमें भी ईश्वर का प्रेम कुछ-कुछ अनुभव होने लगेगा। हम बार-बार उनके पास जाते रहें, ईश्वर के समीप बैठते रहें तो जो उनका स्वरूप है वही हमारा भी हो जाएगा। जो उनके पास जाता है, सन्त मौन में ही उसे अपने जैसा बना देते हैं। वहां जाकर कुछ माँगना नहीं चाहिए । उनसे लेने को जो वस्तु है वह है हरिधन, ईश्वरप्रेम, प्रभु प्रेम। अपने अवगुणों को खत्म करने के लिये उनसे निवेदन करना चाहिए। कृपा करना तो उनका सहज स्वभाव होता है।

## " नानक गुर पूरे नमस्कार "।

गुरुदेव भी ऐसे पूरे गुरु को नमस्कार करते हैं। ऐसे पूरे गुरु से उसके जीवन काल मे भी लोगों को लाभ होता है। और उनके शरीर छोड़ने के बाद भी - यदि हम सच्चे हृदय से उनको याद करें। संत मरता नहीं वो ईश्वर की तरह ही हमेशा हमारे साथ रहता है। आत्मा परमात्मा का कभी नाश नहीं होता। उनके जीवन काल में जितना लाभ मिलता है, उनके शरीर छोड़ने के बाद भी वह लाभ मिलता है। पूज्य गुरू महाराज ने हमें विश्वास दिलाया था कि जो इस समय हम कर रहे हैं जो इस समय हमारी प्रकृति है, हमारे शरीर छोड़ने के बाद भी वही प्रकृति होगी। जो इस वक्त हमारे पास बैठकर भाइयों को लाभ होता है वो यदि सच्चे हृदय से हमारे शरीर छोड़ने के बाद भी याद करेंगे। तो तब भी उनको वही लाभ होगा जो उन्हें हमारे जीवन काल में होता है। तो आपसे निवेदन है कि काम करते खाते-पीते सोते-जागते हर समय उस प्रभु की याद में रहे। यदि इस प्रकार हर समय हमारा ध्यान प्रभु के चरणों की तरफ हो तो हमें क्यों नहीं लाभ होगा ?

गुरुदेव सबका भला करें।

# गुरु भक्ति के साधन और स्वरूप

"मेरा मुझ में कुछ नहीं । जो कुछ है सो तोर , तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ? " यह बात शब्दों में तो हम सभी कह लेते हैं, परंतु यह बात हमारी वास्तविकता नहीं होती । महाराज जनक का महल जल रहा है । लोगों ने जाकर उनसे कहा कि आपका महल जल रहा है । एक संन्यासी हैं, वह दौड़ा- दौड़ा गया कि उस महल में मेरी गठरी और कमंडल रह गया । जनक जी तो नितांत शांत हैं और उधर वह व्यक्ति जो अपने को संन्यासी कहता है अपनी गठरी व कमंडल के लिए इतना पागल हो रहा है यह मोह या आसक्ति आसानी से नहीं छूटती । कभी दस बीस रुपये भी हमारी जेब से गिर जाएँ तो हम उसको दो तीन दिन तक याद करते रहते हैं कि हमारे रुपये कहां गए कैसे खो दिए । यह कैसा है प्रभु के प्रति हमारा प्रेम ? इतनी आसक्ति के रहते हुए क्या हम प्रभु को समर्पण कर सकते हैं ?

हर प्राणी यह जानता है कि मौत के बाद यहाँ हमारा कुछ नहीं है । इस वक्त भी हम स्वप्न देख रहे हैं कि हमारा है क्या क्या और कितना है । प्रत्येक व्यक्ति आसक्त हैं कहता तो है कि मैं मोह में आसक्त नहीं हूँ परन्तु व्यवहार में देखो तो सब प्राणी मोहासक्त हैं । कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिलता जो मोहासक्त न हो यह कैसा समर्पण है ? पर इस सब के लिए हमें घबराना नहीं चाहिए । मेरे पास पत्र भी आते हैं , आप लोग मुझसे बात भी करते हैं कि समर्पण कैसे हो यह साधारण कार्य नहीं है इसके लिए तो तप करना होगा । हाँ यदि ईश्वर कृपा हो तो ऐसे व्यक्ति को कुछ नहीं करना होगा ऐसे व्यक्तियों को महापुरुष अपने साथ लाते हैं जैसे गुरु नानक देव जी गुरु अंगद देवको साथ लाए । पहली ही भेंट में गुरु नानक देव ने पूछा ' तुम्हारा नाम क्या है'? अंगद देव ने उत्तर दिया मेरा नाम है ' लेहना '- लेहना यानि जिस को किसी से कुछ लेना हो । तो गुरु नानक देव बोले ' हमें देना है ' । उन्होंने महज ये दो शब्द कहे और अंगद देव जी को सब कुछ दे दिया ।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद जी को अपने साथ लाये । विवेकानंद भागते थे, तो परमहंस जी उनके पीछे-पीछे जाते थे । देखिये ऐसे गुरु-शिष्य की कैसी अद्भुत लीला होती है । स्वामी विवेकानंद अमेरिका गए हैं । शुरू में इनको अपने गुरु परमहंस

जी पर पूरा विश्वास नहीं था। अमेरिका में विश्व सर्वधर्म सम्मेलन( ऑल वर्ल्ड रिलीजस कांफ्रेंस ) था, उसमें विवेकानंद जी को प्रवचन देना था। बड़ी ऊंची सभा थी जिसमें संसार भर के बड़े बड़े उच्च कोटि के विद्वान पहुंचे हुए थे। उस समय विवेकानंद की आयु छोटी थी, सोचने लगे मैं तो एक साधारण सा युवक हूँ, इन बड़े बड़े योगियों और वयोवृद्ध संतों के आगे मेरी क्या गिनती है ? यह सोच कर वह घबरा गए। रात को सोये तो गुरु महाराज ( परमहंस जी ) प्रकट हुए और कहा कि नरेन्द्र ! तुम क्यों चिंतित हो रहे हो ? प्रातःकाल सम्मेलन में तुम्हें जो कुछ बोलना है वह मैं तुम्हें अभी कंठस्थ कराए देता हूँ। यह कह कर उन्होंने सारा प्रवचन बोल दिया। विवेकानंद जी में एक प्रबल संस्कार था- एक विलक्षण शक्ति थी कि वे श्रुति धर थे। वह एक पुस्तक पढ़ लेते थे तो वह तुरंत उन्हें याद हो जाती थी। उनसे पूछो कि अमुक बात कहाँ लिखी है तो वे पृष्ठ और पंक्ति तक बता देते थे। उनकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी। वह प्रातः उठे तो देखा कि रात को उनके गुरुदेव ने उन्हें जो बताया था वह सारा ज्यों का त्यों उनके मस्तिष्क में भरा पड़ा है। उन्होंने उस महासम्मेलन में आकर इतना प्रभावशाली भाषण दिया कि उन्हीं का प्रवचन सर्वश्रेष्ठ माना गया। ये है गुरु कृपा। ऐसी कृपा कौन कर सकता है- सब व्यक्ति नहीं कर सकते। ऐसी कृपा महान गुरुजन ही कर सकते हैं। मेरे गुरुदेव, महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज फरमाया करते थे कि ऐसा गुरु हजार या बारह सौ साल बाद कोई एक आया करता है। बाकी सब 'गुरु लोग' तो सेवक है, मॉनिटर है, रास्ता चल रहे हैं। अपना उद्धार करने का प्रयास कर रहे हैं और दूसरों की भी सेवा कर रहे हैं। गुरु महाराज के स्पष्ट शब्द है कि जितनी अधिक सेवा करोगे उतना अधिक लाभ होगा। इस प्रकार का कोई संबंध गुरु से हो जाए तो ठीक है। ऐसे भाग्यशाली व्यक्ति को कुछ नहीं करना पड़ता। गुरु की या परमात्मा की कृपा से ही सब कुछ हो जाता है। मगर यह कृपा सब पर नहीं होती। इसलिए हमको तो साधना करनी चाहिए। साधना में पहली बात यह है कि आपको साधना में रूचि गहरी हो। बिना रूचि के प्रगाढ़ हुए आनंद नहीं आएगा। जब तक आनंद नहीं आता, आपका चित्त निर्मल नहीं होगा। और जब तक चित्त निर्मल नहीं होता, आप साधना में किसी तरफ नहीं बढ़ सकते।

भाई लोग मन की एकाग्रता की बात कहते हैं। कहते हैं कि मन एकाग्र नहीं होता। मन एकाग्र कैसे हो ? आपकी लगन कितनी है ? इसलिए पहले तो एकाग्रता की विशेष चिंता नहीं करें- प्रेम की चिंता किया करें। हमारा गुरु या ईश्वर की तरफ प्रेम क्यों नहीं उत्पन्न होता, क्यों नहीं बढ़ता ? हम संसार के व्यक्तियों का भय रखते हैं, पत्नी पति का भय रखती है, पति पत्नी का भय रखता है, बच्चे माँ-बाप का भय रखते हैं। संसार में हमारा जिसके साथ व्यवहार है, हम उसके साथ थोड़ा-बहुत भय रखते हैं। परन्तु ईश्वर के साथ हमारा कोई भ य का भाव नहीं होता। पूछिये अपने मन से कि क्या आप ईश्वर या गुरु से भय का भाव रखते हैं ? इसलिए

पहले सदगुरु को तो अपनाइए फिर ईश्वर से प्रेम उत्पन्न करिए। चिंता और चेष्टा इसकी करनी चाहिए कि व्याकुलता व विरह कैसे उत्पन्न हो और फिर प्रति पल कैसे बढ़ती जाए।

प्रेम की विरह-वेदना के सामने मन एकाग्र होता ही है, यह एक साधारण सी बात है। मन एकाग्र हो सकता है। इसकी कई तकनीक है। आप चाहें तो मन एकाग्र होने में कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन प्रेम उत्पन्न होने में देर लगती है और इसी में कठिनाई है। जो पुराने अभ्यासी हैं उनको इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिए क्योंकि हमें अपना वर्तमान जीवन काल में ही अपने स्वरूप में या गुरु के स्वरूप में या परमात्मा के चरणों में स्थित होना है। सिर्फ कभी-कभी थोड़ा प्रकाश देख लेना या कभी-कभी शब्द सुनाई आ जाए तो शुक्र है, आपका रास्ता गलत नहीं है, परंतु मंजिल अभी दूर हैं।

गुरु महाराज ने लिखा है कि प्रकाश देखना या शब्द सुनाई देना, आदि तो मामूली बातें हैं। आत्मा में, आत्मा के प्रेम में, स्थिति आनी चाहिए। तब अपने स्वरूप में स्थित होने से या अंतर में गुरुदेव के दर्शनों से सब दुखों की निवृत्ति होती जाएगी। हमारे किसी संबंधी की मृत्यु हो जाती है तो हमें दुःख होता है। क्यों होता है ? क्योंकि उससे हमारा संबंध है, उनके शरीर के साथ हमारा मोह है। हम जानते भी हैं कि ये जो जितने नाम और रूप हमें दिखते हैं, सब नश्वर है। परन्तु फिर भी हम इसमें फंसे हुए हैं। क्यों फंसे हुए हैं क्योंकि हमारा ईश्वर के साथ लगाव नहीं है। हम वास्तविक प्रेम के संबंध को नहीं समझते- बड़े लोग फंसे हुए हैं, हमारी गिनती तो कुछ भी नहीं है। जब आसक्ति से मुक्त होकर हम सब कुछ भूल जायेंगे- तब होगा हमारा सच्चा समर्पण। जैसे-जैसे आप आगे बढ़ते जा रहे हैं, अपने लक्ष्य को अच्छी तरह समझते जाइए उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने जीवन की बाजी लगाए। यही साधना का उद्देश्य और उपलब्धि है।

पूज्य गुरुदेव आपको शक्ति दें ।

# " इच्छा-कर्म-संस्कारों का फल और इससे मुक्ति के साधन "

जो यह जानना चाहता है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे कहाँ जाना, है मेरा सच्चा मालिक कौन है, वह कहाँ रहता है, और उसके पास पहुंचकर सच्चा आनंद सच्चा सुख कैसे पाया जाए, वहीं परमार्थी है। उसे दुनिया के सब सुख होते हुए भी चैन व खुशी यहाँ नहीं मिलती। अंदर से वह सदा उदास रहता है। वह वैसे तो दुनिया का सब व्यवहार आम लोगों की तरह करता है लेकिन धर्मानुसार। परमार्थी के हृदय में दया और प्यार सब के लिए होता है लेकिन मोह किसी से नहीं रहता। आसक्ति और फंसाव कहीं नहीं होता।

इस आवागमन ( जन्म मरण ) के चक्कर से छुटकारा कैसे मिले ? इस पर बड़े बड़े संतों की वाणी और लेखकों की पुस्तकें भरी पड़ी हैं जिन्हें पढ़कर हमारी बुद्धि चकरा जाती है और हमारे कुछ हाथ नहीं लगता। हमारे गुरुजनों ने बड़े आसान ढंग से इसे बताया व समझाया है जो गंभीरता से ध्यान देने और अनुसरण करने योग्य है।

विचारणीय है कि आखिर हम यहां इस संसार में क्यों आए हैं ? आत्मा क्यों इस आवागमन के चक्कर में पड़ी ? अपनी इच्छाओं को पूरा करने तथा उन्हें भोग कर उससे उपराम होने के लिए प्रभु ने हमें यहाँ भेजा है। लेकिन यहां आकर बजाय इच्छाओं से उपराम होने के हम और इच्छाओं का अंबार इकट्ठा कर लेते हैं और दिनों दिन उलझते चले जाते हैं।

अनेक जन्मों के संस्कारों का बोझ लेकर हम पैदा होते हैं जिन्हें या तो भोग कर या फिर गुरु कृपा से सरलता से निपटा जा सकता है। अगर उन संस्कारों को किसी तरह निपटा

लिया जाए और आगे संस्कार न बने तो उद्धार संभव है। जो संस्कार स्थूल रूप धारण कर चुके हैं वे तो तकदीर बन गए हैं। इन्हीं को प्रारब्ध कर्मों की निश्चित नियति या किस्मत का लिखा कहा जाता है जिन्हें भोग कर ही निपटा जा सकता है बहुत से संस्कार भी बीज रूप में मस्तिष्क में दबे पड़े हुए हैं। उनको गुरु कृपा से अभ्यास में भी हम निपटा सकते हैं। यह संस्कार जो बीज रूप में पड़े हैं अगर स्थूल रूप में धारण करेंगे तो एक-एक संस्कार को निपटने में वर्षों लग जायेंगे। परन्तु ग्रीक कृपा से उन संस्कारों को आसानी से नष्ट किया जा सकता है। भुने हुए बीज की तरह उनमें अंकुर नहीं फूटते। गुरु कृपा से ज्ञान उदय होने पर उनका स्वतः नाश हो जाता है।

आगे संस्कार न बने इसके लिए पूज्य गुरुदेव ने जो अभ्यास बताया है उसे दृढता पूर्वक ग्रहण करके, करते रहना चाहिए। मोटे ढंग से, संतमत के अभ्यास में आंख, कान और जबान- इन तीन प्रमुख इंद्रियों पर प्रतिबंध लगाना होता है। आँख ऐसी इन्द्रिय हैं जिससे एक जगह पर खड़ा होकर मनुष्य बहुत दूर तक का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसलिए यह संस्कार जोड़ने में प्रमुख भूमिका अदा करती है। इस पर नियंत्रण रखने के लिए संतों ने कहा है कि इन चर्म चक्षुओं ( स्थूल आँखों ) से अपने पैरों के आगे देखना चाहिए जिससे ठोकर न लगे या पैरों में कोई चीज न चुभ जाए। अंतर की आंखों से गुरुदेव के चरणों का ध्यान करना है। नाच, तमाशा और सिनेमा वगैरह देखना संस्कार बनाने और बढ़ाने में अत्यंत प्रभावी रूप से सहायक होते हैं। अतः इससे बचते रहने का आदेश है।

जिह्वा से गुरु ने जो नाम दिया है उनको लेते रहें। अनाप-शनाप, झूठ-सच, अनर्गल वार्ता से अपने को अलग रखें। आज के समाज में समय काटने के लिए लोग बहुधा फिजूल की बातें करते हैं जिससे किसी का कोई उपकार नहीं होता, वरन अपना और औरों का अहित ही होता है और नए संस्कार बनते हैं। जिह्वा का उपयोग प्रभु के गुणगान में करना उचित है। लिह्वा स्वाद का भी रस लेने वाली इंद्रीय है। अतः खान पान में संयम बरते। भोजन में भी जो चीज बहुत अच्छी लगे उसे कम से कम लें वरना उसका भी संस्कार बन जाएगा यानी उस चीज में हमारी आसक्ति बढ़ जाएगी।

तीसरी इंद्रीय कान का उपयोग प्रभुकी महिमा-गुणगान आदि धार्मिक वार्ताएं सुनने में करें। गलत, अश्लील बातें न सुने। अंदर के कानो में अनहद शब्द, जो यदि गुरुदेव ने आपको बताया हो तो, उसे सुनने की कोशिश तथा अभ्यास करें। इस तरह यथा संभव एकांत तथा संयम का जीवन बिताने से आगे संस्कार कम बनेंगे।

जब तक इस संसार तथा यहां की चीजों के प्रति हमाररी आसक्ति है, तब तक हमारा उद्धार संभव नहीं है। संतमत के आचार्य इतने दयालु हैं कि त्याग प्पर बल नहीं देते। वे कहते हैं कि दुनिया भोगों, लेकिन धर्मानुसार और अनुभव करो कि कहाँ सच्चा और शाश्वत सुख हैं। दुनिया की नाशवानता पर गौर करते चलो और दुनियावी भोगों के आकर्षण से उपराम होते चलो।

इस रास्ते का सबसे बड़ा रहस्य है कि गुरुजन आपको इतना प्रेम देते हैं कि आप उनकेप्रेम में मस्त होकर बहुत सी बातें ( बुराइयाँ ) जो गुरुदेव के आदेशों-उपदेशों के अनुसार उचित नहीं होती स्वयं छोड़ देते हैं। गुरुजनों का प्रेम, जो निस्वार्थ और ईश्वरीय प्रेम होता है,उसके आकर्षण का क्या कहना है ? इसमें हम सभी अकारण ही खिंचते चले जाते हैं और उसके प्रेम में हम स्वतः शुद्ध होने लगते हैं। उनके सानिध्य में बुराइयों को छोड़ने में अअधिक कठिनाई नहीं होती। हंसी-खुशी लगन के साथ हम बुराइयों से मुक्त होते जाते हैं और हमारी आसक्ति भी समाप्त होती जाती है।

हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि संतमत में गुरु प्रेम ही साधना की सफलता की जड है। बिना इसके सारी साधना फीकी है और इतनी जल्दी फायदा भी नहीं होता। इसलिए हमें किसी संत का पल्ला मजबूती से पकड़ना जरूरी है। किसी भी तरह उनका प्रेम-पात्र बनना है तथा उनकी संगति में रहकर उनके गुणों को धारण करना है। महापुरुषों की वाणी पढकर, उस पर मनन करना है। गुरु भक्ति को अपनाना तथा उनके आदेशोंका पालन करना हमारा प्रमुख कर्तव्य होना चाहिए।

परम पूज्य गुरदेव ( डॉक्टर श्रीकृष्ण लाल जी ) जी कहा करते थे कि, " हजार वर्ष की अपनी तपस्या से क्षणमात्र की गुरु कृपा की दौलत कहीं ज्यादा फायदेमंद होती है "। यह धन अपनी साधना के बल पर प्राप्त करना असंभव तो नहीं है, परंतु अति कठिन है। इसे प्राप्त करने के लिए किसी संत की निकटता प्राप्त करना अति आवश्यक है। गुरु के आदेशों का पालन करने के लिए मेहनत( साधना " करनी होगी जिससे उनकी ऐसी कृपा प्राप्त हो सके। सभी संतों का यही कहना है। तुलसी दास जी ने लिखा है-

" यह गुण साधन ते नहिं होई ,
तुम्हरी कृपा पाए कोई-कोई

गुरुदेव हम सब पर कृपा बनाए रखें तथा हमें सही रास्ते पर लगाए रखें। उनकी कृपा कभी न कभी तो अवश्य होगी - यही आस्था और विश्वास साधकों का सहारा और आसरा है।

गुरुदेव आपका कल्याण करें।

# नियमित साधना का महत्व

प्रत्येक व्यक्ति के समीप भगवान रहते हैं। कहते हैं हमारे हृदय में भगवान है। शरीर के प्रत्येक अंग में जहां आत्मा की अनुभूति होती है, विश्व के कण-कण में परमात्मा विराजमान है। ऋषियों - महापुरुषों ने साधना करके शरीर के कुछ ऐसे हिस्से बताएं हैं जो बाकी हिस्सों से अधिक संवेदनशील हैं। उनमें अधिक संवेदना है। वहां मन को एकाग्र कर के प्रभु की अनुभूति सरलता से हो जाती है। प्रभु इतने समीप होते हुए भी हमें क्यों नहीं दीखते ? पूज्य गुरु महाराज ( महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज ) को 5 – 6 वर्ष की आयु में कृष्ण भगवान के साकार रूप में दर्शन होते थे हमें क्यों नहीं होते हैं ?

हमारे भीतर में निर्मलता नहीं है। हम अपने पिछले जन्म के संस्कारों का कूड़ा करकट अपने भीतर में डालते रहते हैं। हम आँखों से बुरे दृश्य देखते हैं, कानों से बुराई सुनते हैं, निंदा सुनते हैं, मुख से कटु वचन बोलते हैं। ये तीन मुख्य इंद्रीय है जिससे हम भीतर में और अधिक कूड़ा करकट इकठ्ठा करते हैं। हमारे पिछले संस्कार तो है ही और भी नए पैदा होते रहते हैं। ये हमारी आत्मा पर आवरण हो जाते हैं। हम मंदिर में जाते हैं। भगवान की मूर्ति के आगे पर्दा लगा होता है तो हम पुजारी जी से प्रार्थना करते कि वह पर्दा हटाकर हमें भगवान के दर्शन करा दें। इसी तरह भगवान की मूर्ति तो हमारे भीतर में है, पर्दा हमने स्वयं लगा रखा है। हम इस पर्दे को क्षण-प्रतिक्षण और मजबूत बनाते चले जाते हैं।

यह पर्दा कैसे टूटे ? मनुष्य के हाथ में दो ही साधन है - एक प्रेमा भक्ति का, दूसरा ज्ञान का। ज्ञान के भी दो रूप हैं एक बुद्धि से समझना व दूसरा अनुभूति से अनुभव करना। कुछ वेदांति ऐसे हैं जो कहते हैं कि सर्वभूतों में परमात्मा सर्व व्यापक है, कण-कण में हैं, भीतर में भी वही है, बाहर भी वही है। यह शरीर, मन, बुद्धि सब कुछ उसी का है। यही उसका विराट रूप है। जो लोग इस तरह समझते हैं उन का कहना है कि अन्य कोई साधना करने की आवश्यकता नहीं है। यह कुछ हद तक ठीक है। यदि उपरोक्त बात समझ में आ जाती है, मन स्थिर हो जाता है, कुछ नहीं सोचता नहीं है, संकल्प विकल्प नहीं उठाता और इस बात की समझ आ जाती है कि सब कुछ वही है, तो उनको कुछ नहीं करना। प्रमाद अच्छे या बुरे विचार, मन में तरंगें उठाकर हमारी दृष्टि में दोष उत्पन कर देते हैं। दृष्टि इन स्थूल (बाहर की) आंखों की व दृष्टि मन की भी। इसलिए हम भेदभाव देखते हैं, अच्छाई- बुराई पाप-

पुण्य देखतेहैं। उनका कहना है कि यही माया है व माया को उत्पन्न करने वाला अज्ञान है। इस अज्ञान के कारण ही हमें भेदभाव द्वैत , मेरा-तेरापन दिखता है। यह गलत नहीं है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति न तो इसको भली-भांति समझ पाता है और न ही उस बात को पकड़ कर अभ्यास में, अपने व्यवहार में उतार सकता है। इसलिए ज्ञानियों ने, खासकर महर्षि रमण ने ऐसे वेदांतियों को सावधान किया है कि जब तक हमारे भीतर में अनुभूति न हो तब तक साधन करते रहना चाहिए। यह नहीं है कि हमने समझ लिया कि " मैं ही ब्रह्म हूँ " मुझसे ही इस सृष्टि की उत्पत्ति हैं। तमाम धन-दौलत, सामान मेरा ही है और उधर उसी समझ-बूझ में हम सब का शोषण भी करते जाते हैं। तो यह तो सच्ची समझ-बूझ नहीं आई। अभी तक " मैं " यानि अहंकार काम कर रहा है। इसलिए महर्षि रमण ने सावधान किया है कि जब तक अनुभूति न हो अर्थात आत्मा के ऊपर के आवरण दूर न हो तथा यह स्थिति निरंतर न रहे, सहज अवस्था न हो, यानी प्रतिक्षण भगवान के दर्शन न होते हो , तब तक साधना का त्याग नहीं करना चाहिए। वे तो यहाँ तक कह जाते हैं कि यदि संन्यासी के हृदय में एक भी संकल्प उठता है तो वह संन्यासी नहीं है क्योंकि संकलप उठने से आत्मा और माया के बीच पर्दा आ जाता है। यह साधन जो ज्ञानी, बुद्धिजीवी लोग हैं जिनकी बहुत ही तीव्र बुद्धि होती है, वे हीं कर पाते हैं। इसके लिए नींव जो है वह शुद्ध चरित्र की है।

दूसरा रास्ता प्रेमा भक्ति का है। भक्ति मुख्यतः नौ प्रकार की है। परंतु इसका और विस्तार किया गया है। उस विस्तार में हमें नहीं पड़ना है। ईश्वर-कृपा से यदि किसी महापुरूष का संग मिल जाता है और वे हमें अपना लेते हैं, तो यदि हम उनकी सेवा करें, उनके साथ प्रेम करें, जैसा कि भगवान कृष्ण ने गोपियों के साथ किया था उसी प्रकार का व्यवहार यदि हम करें, तो हमें सफलता सरलता से मिल सकती है। इससे सरल साधना और कोई नहीं है।

विचार में भी भगवान हैं, वाणी में भी भगवान हैं , आंखों में भी भगवान बसते है, कानों में उनकी मधुर बासुरी की ध्वनि सुनाई देती है। बुद्धि में भगवान हैं, हृदय में भगवान है, रोम रोम में भगवान है। ये कैसे डोलते हैं ? जैसे सूरदास जी ने बसाया है। भगवान उंगली छोड़कार तनिक दूर होते हैं तो सूरदास जी क्या कहते हैं- कहां भागोगे ? यह शारीरिक प्रेम नहीं, बहुत उच्च कोटि का प्रेम है। भगवान मैंने आपको अपने हृदय में बसा लिया है। हृदय से निकलकर कहाँ जाओगे ? आप तो मेरे अंग- अंग में ही समाये हुए हैं। ऐसी प्रीति है जो तोड़ी न टूटे, छोड़ी ने छूटे। क्या है यह आपकी लीला ? आप कहाँ जायेंगे ? इस साधाना के लिए नारद जी के भक्ति सूत्र में जो मुख्य बातें बतलाई है वे हैं अपना सर्वस्व निछावर कर देना, अपनी कोई इच्छा और कोई आशा न रखना।

कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसके भीतर में कोई इच्छा न हो। कहने में बड़ा सरल लगता है पर इच्छा रहित बनना तो भगवान बुद्ध बनना हैं। आशा रहित होना, अमर बनना है। " राज न चाहूँ मुक्ति न चाहूँ, मनप्रीति चरण कमला रे " मुझे राज नहीं चाहिए, संसार की वस्तुएं नहीं चाहिए। हम सबसे उत्तम वस्तु मुक्ति भी नहीं मांगते। भगवान हमें इस धरती की रज चाहिए, मोह न हो हमारा संसार की वस्तुओं के साथ प्रेम न हो, चिपकाव न हो। त्याग की भावना हो, भगवान के चरणों के साथ प्रेम हो। सिवाय प्रभु के चरणों के अन्य किसी के साथ लगाव नहीं। मेरा मुझमें कुछ नहीं है- यह शरीर तेरा, मन तेरा, धन तेरा, संतान तेरी, सब कुछ तेरा यहाँ तक कि मेरा जो भाव है, आचरण, बुराई-भलाई प्रभु ये सब तेरी ही है, मेरा अपना कुछ नहीं है। वह यह भी अभिमान नहीं करता कि मैं शुद्ध कर्म करता हूँ। कुछ नहीं, मैं केवल प्रभु के द्वार का कुत्ता बना रहूं । वह धनी का द्वार नहीं छोड़ता। ऐसी भक्ति चाहता है कि यह द्वार ना छूटे, उसे अभिमान नहीं, सिर्फ मान है कि प्रभु मेरा है, मेरा वह पति है, मेरा वह पिता है, मेरा वह सर्वस्व है।

अधिकारी बनने के लिए और भी कई बातें आवश्यक है, जैसे कुसंग का त्याग करना, बुरे वातावरण का त्याग करना आदि। यह अभी तक अपरा भक्ति है, संसार की भक्ति है। हम देखते हैं कि ब्रज में लोग भगवान का नाम कम लेते हैं, राधा-राधा का नाम ही सबकी जिह्वा पर रहता है। राधा का नाम इतना क्यों फैला है ? राधा भगवान में लय होकर भक्ति का अंतिम रूप हैं , पराभक्ति का रूप है। कांता-भाव, राधा-भाव जीवन का लक्ष्य है-भगवान से एक होकर। सूफी इसको " हमा ओस्त " कहते हैं। " अहम ब्रह्मास्मि " में भी वहीं हैं। इससे भी ऊपर जाना है, " हमा अजोस्त " अर्थात मैं उसी से हूँ । किसी भी जिज्ञासु की साधना पूर्ण नहीं होती जब तक वह स्वयं पूर्ण होकर औरों को भी पूर्ण नहीं बनाता है।

हम सबको ही राधा जी से प्रेरणा लेनी होगी । लेकिन इस स्थिति तक पहुंचनें के लिए नियमित तौर से और जहाँ तक हो सके निरंतर ही साधना तो करनी ही होगी।

# पर दोष दर्शन मत करो, मत सुनो

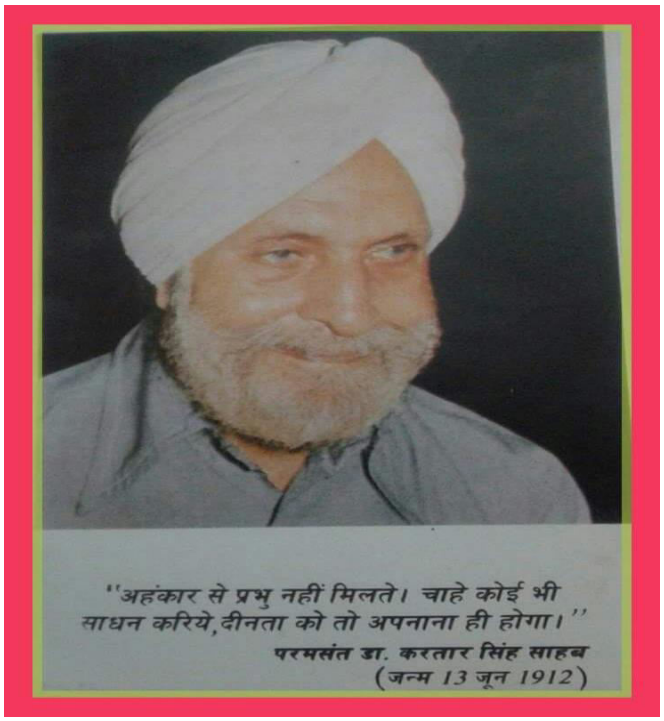


पूज्य गुरू महाराज ( महात्मा श्री कृष्ण लाल जी ) कहा करते थे कि अपनी त्रुटियों को देखो , स्व निरीक्षण करो, अपने भीतर में झांको और अपनी कमजोरियों को देखो । दूसरों की कमजोरियों की तरफ आपकी नजर नहीं जानी चाहिए । इसके साथ उनका यह भी आदेश था कि यदि आज कोई व्यक्ति आपके किसी मित्र या अन्य की बुराई करता है तो कल वो दूसरी जगह जाकर आपकी भी निंदा कर सकता है। जो साधक है, यदि वह किसी की निंदा सुनने में आनंद लेता है, तो उसका चित्त दूषित हो जाता है जिससे उसकी साधना में विघ्न पड़ जाता है। भूल कर भी ऐसा नहीं करना चाहिए। यदि कोई ऐसा करता है तो हमें वहां से उठ जाना चाहिए या अपने मनोबल से अपना ध्यान उन आरोपों से अलग कर लेना चाहिए, आप उसमें आनंद मत लीजिये।

हमें भूल कर भी किसी के दोष नहीं देखने चाहिए, यदि देखते भी हैं तो ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभु !इस पर कृपा करें ताकि यह अपने दोषों से मुक्त हो जावे । हम दूसरों की स्तुति नहीं सुन सकते परन्तु हमें निंदा सुनने में बडा आनंद आता है। साधक को सावधान रहना चाहिए। उसे न किसी की निंदा करनी चाहिए , न किसी की निंदा सुननी चाहिए । किसी की निंदा सुनने से अपने भीतर में एक नया संस्कार बन जाता है, हमारा चित्त दूषित हो जाता है, अशांत हो जाता है। साधना का यह अर्थ नहीं हैकि हम सुबह 5 - 10 मिनट बैठ गए , नहीं तो नहीं बैठे। यदि हमारा सारे दिन का व्यवहार उस साधना के अनुसार नहीं है तो समझ लीजिये कि हमारी वह साधना भी एक वृत्ति है, आपने अपना उद्धार करने का कोई विशेष कदम नहीं उठाया है।

हमारी साधना और हमारी दिनचर्या में समानता होनी चाहिए। साधना और सारा दिन हम जो दिनचर्या करते हैं हमें उसमें आनंद आना चाहिए। हमारी इच्छा के प्रतिकूल किसी नें कोई

बात कह दी तो बस हमारी कई महीनों की साधना खत्म हो गई एक क्षण में। इस भीतर के आनंद की रक्षा करनी पड़ती है।

इंद्रियों के जो विषय हैं, हमें उन पर संयम लाना चाहिए । मन को बुद्धि के अधीन करना चाहिए । बुद्धि को आत्मा से प्रेरणा लेनी चाहिए। हमारे जितने भी कर्म, विचार, शब्द हों, वो सब आत्ममय हों। इतना करते हुए भी ये हमारी आत्मिक कमाई खत्म कर देते हैं। हमारी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती, क्रोध आता है, सब कुछ खत्म हो जाता है। तो साधक को बड़ा सतर्क रहना चाहिए, अनुशासन में रहना चाहिए, संयम में रहना चाहिए। गुरु इसलिए किया जाता हैं कि वह आपकी देखभाल करता रहे किन्तु वह आपकी देखभाल तभी करेगा जब आप उसके आदेशों का पालन करेंगे।

संत सत् पुरुष होना चाहिए। सत् पुरुष का अर्थ है जो सच से तदरूप हुआ हो। भीतर-बाहर वो सत् ही हो। वो जहाँ बैठे उसके भीतर से सत् की रश्मियां चारों और फैले और जो भी व्यक्ति उस महापुरुष-सिद्ध पुरुष संत के पास आवे उसके हृदय की मलीनता धीरे-धीरे शुद्ध होती चली जाए, साफ होती चली जाए। ऐसे उच्चकोटि के संत बहुत कम है। गुरु महाराज फरमाया करते थे कि सच्चा संत हजार वर्षों के बाद कोई एक आता है परंतु गुरुमुख अनेक आते हैं । तो सच्चा संत ना मिले तो गुरुमुख के पैर पकडने चाहिए। जहां संत कम है वहां सच्चे जिज्ञासु भी कम है वास्तव में जैसे लोग- बाग सिनेमा या क्लबों में जाते हैं इस तरह वे कहते हैं कि सत्संग में भी 5 – 10 मिनट चले आये, तो दो चार भजन सुने, मन थोड़ी देर के लिए स्थिर हुआ शांति मिली, तो यही सत्संग है। यह सत्संग नहीं है। सत्संग का अर्थ वही सोच सकता है जिसके भीतर में सच्ची जिज्ञासा हो। जिसको महान पुरुष का संग मिल गया है , वहीं सत्संग जानता है। उस संत में वही गुण होते हैं जो परमात्मा के गुण शास्त्रों में लिखें हैं। उसमें और ईश्वर में कोई अंतर नहीं। ऐसा व्यक्ति यदि मिल जाए तो कुछ करने की जरूरत नहीं है। श्रद्धा के साथ उनके चरणों में बैठना चाहिए, उनसे प्रेम करना चाहिए , उनके आशीर्वाद अर्थात गुरु परसादी लेनी चाहिए। हमें बस इतना ही करना है, और कुछ नहीं करना। परंतु हम से इतना होता नहीं है। मनुष्य के भीतर में जन्म-जन्मांतर के संस्कार हैं। उन संस्कारों के कारण मनुष्य के भीतर इतनी इच्छाएँ हैं कि वह चाहते हुए भी सच्चा सत्संग नहीं कर पाता। महात्मा बुद्ध ने कहा था कि मोक्ष का एक ही उपाय है कि इच्छाओं को त्याग दें। भगवान कृष्ण भी दूसरे अध्याय के अंतिम दो श्लोकों में सिद्ध पुरुष का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सच्चे जिज्ञासु के भीतर में कोई इच्छा न रहे। उसके भीतर की कैसी अवस्था हो ? उसके भीतर " मैं और मेरेपन " का तनिक भी भान न हो। पर किसके अंदर होगा ऐसा ? क्या आपके

अंदर कभी ऐसा क्षण आया है जब आपके भीतर में " मैं और मेरापन " का ख्याल न हो, भान न हो। जब वह स्थिति आ जाती है तो आप तो स्वयं भगवान बन गए।

संत के पास जाकर कैसा व्यवहार करना चाहिए ? जो मनुष्य संतों के पास जाकर कुछ नहीं चाहता, दुनिया की कोई चीज नहीं चाहता सिर्फ अपने उद्धार के लिए उनकी शरण ग्रहण करता है , ऐसा आदमी अधिकारी है। ऐसे संत के पास जाकर कुछ नहीं मांगना चाहिए। ऐसे संत के बाद जाकर किसी प्रकार की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। भगवान गीता में कहते हैं कि भक्ति निष्काम होनी चाहिए। अपने उद्धार की भी चिंता मत करिये। व्यक्तिगत मोक्ष स्वार्थ है- यह गीता का सार है। विवेकानंद इसी आधार पर कहते हैं कि हे भगवान ! मुझे मुक्ति नहीं चाहिए, हजार जन्म और दे परन्तु मुझे शक्ति दे कि मैं तेरे रूप का सेवा करता रहूं। मां को, परमात्मा को , गुरु को, सरलता प्रिय हैं। अपने मन की जो होशियारी है, दुसरे शब्दों में अपने मन को, एक तरफ रख देना चाहिए। संत जो कहे, जिसमें उसकी प्रसन्नता हो , वह काम करना चाहिए। यही मन का समर्पण है। यह बडा कठिन है। हम साधना में मन को नहीं दे पाते। हम तो मन की साधना करते हैं। गुरुदेव कह रहे हैं मन दे दो। शेष क्या रह जाता है ? ऐसे व्यक्ति के भीतर जो गुरु प्रसादी मिलेगी वो हजम हो जाएगी।

**' माई में धनपायो हर नाम, मन मेरा धाम में छूटे वो कर बैठो किसराम '**

जब ये संत परसादी मिलती है, जिसको नाम कहते हैं , आशीर्वाद कहते हैं, प्रेम कहते हैं, तब मन की चंचलता खत्म हो जाती है। अब शांति है। उस प्रसादी में आत्मिक प्रसादी है , परमात्मा का रूप हैं, परमात्माका आनंद है। उस प्रसादी से मन का जो अतीत है, संस्कार हैं वो धीरे-धीरे उनके चरणों में बैठकर, उनकी चरण रज लेकर घुलते जाते हैं इससे सरल साधन कोई और नहीं है - अपने अतीत को भूलना और अपने भीतर से मुक्त होना। तो खोज में रहे कि ऐसा महापुरुष मिल जाए। संत आत्मा के स्थान पर होते हैं। सूरज की तरह उसके भीतर से आत्मा की रश्मियां चारों ओर अप्रयास ही फैलती रहती है उस सूर्य रूपी प्रकाश की अनुभूति, प्रकाश आनंद व प्रकाश की प्रसादी वही लेगा जो अपने चित् को निर्मल कर के जाएगा। किसी महापुरुष के पास जाए तो भीतर में निर्मल होकर जाएं। तब ऐसा नहीं हो सकता कि वह अपनी कृपा प्रसादी न दें। ईश्वर अपनी कृपा आप सबको न दे , ऐसा हो ही नहीं सकता। उसका तथा संत का भी तो सहज स्वभाव है, विरद है कि वहां से कोई खाली हाथ नहीं जा सकता।

कोई गंगा जी जाए और उसमें स्नान न करें तो इससे गंगा जी का क्या दोष है। इसी तरह संतों में भगवान शिव के सिर से जो गंगा निकलती है वह क्या है ? वह आत्मिक गंगा बहती है। अब दोष किस का। जो उस गंगा में स्नान नहीं करता, दोष उसका है। जो दीवार खड़ी करके

आता है उसको क्या प्रसादी मिलेगी ? इसलिए ऐसे महापुरुष के पास जाएं तो निर्मल चित्त हो कर जाये। और कुछ करने की जरूरत नहीं है। जहां हम प्रयास करते हैं वहां बाधा पडती है। तो अपने आप को समर्पण कर दें। जब भी ऐसे महापुरूष के पास जाए तो क्या ले जाएँ ? श्रद्धा, कोमलता, आदर, सम्मान ले जाए। रूखापन छोड़ दें। भगवान तो परिपूर्ण है, सभी कुछ तो भगवान का है। भगवान के पास हम क्या ले जाए ? ईश्वर के पास बेशक सब कुछ है। परन्तु उसे जिज्ञासुओं की दीनता प्रिय हैं । दीनता लेकर जाओ, रूखापन लेकर मत जाओ। ऐसे संतों के पास बैठकर भाव उत्पन्न होता है, एक प्रकार की उत्सुकता उत्पन्न होती है, श्रद्धा , दीनता तथा गरीबी उत्पन्न होती है। बिना भाव के , बिना कोमलता के, ईश्वर की भक्ति नहीं हो सकती। भगवान भाव के भूखे हैं , इश्वर को भाव चाहिए। जिज्ञासु के हृदय में भाव होने चाहिए।

' संत दुनिया में उतना तो देते हैं जिससे पेट भर जाए परन्तु जो उससे ज्यादा प्रेम करते हैं उनका घर उजाड़ देते हैं कि गरूर अभिमान चला जाये ' आप कहेंगे कि यह कैसा नियम है। गुरु नानक देव जी ने कहा है कि बिना बेईमानी के पैसे या माया एकत्र नहीं हो सकती। तो जो बेईमानी से पैसा कमाएगा उसका मन कैसे शांत रह सकता है। उसका मन कैसे अधिकारी बन सकता है ? इसीलिए इस रास्ते पर आने वाले के लिए दो चीजें बहुत आवश्यक है। एक गरीबी. आर्थिक गरीबी और मन की गरीबी भी। दूसरी गरीबी के साथ मुलायमियत हो , अखडपन नहीं, उस गरीब व्यक्ति के मन में एक प्रकार की व्याकुलता हो, विरह हो , परमात्मा को पाने के लिए और इसके लिए उसमें सेवा भाव हो। सेवा वही कर सकेगा स्वयं सादगी अपनाता हो। इस रास्ते में आकर व्यक्ति को सेवा करनी चाहिए- अपनी सेवा, समाज की सेवा, परिवार की सेवा। बिना सेवा के इस रास्ते में सफलता नहीं मिलती। इस रास्ते में कुछ मांगना नहीं चाहिए। **' राज न चाहूं मुकुट न चाहूँ, मन प्रीत चरण कमला की चाहूँ '**। हे प्रभु ! मुझे कुछ नहीं चाहिए। राज यानी संसार का वैभव, शोहरत, यहाँ तक कि मुझे मुक्ति भी नहीं चाहिए। मुझे तो आपके चरणों की रज चाहिए। ' उनकी शरण में तो वह आये जो अपनी दुनिया को आग लगा दे '। यज्ञ करते हैं उसमें आहुति देते हैं। ये आहुति क्या है ? जो हमारे पास है वो सब कुछ तुम्हारे चरणों में अर्पण। अग्नि को परमात्मा का रूप माना गया है। सब कुछ अर्पण कर देते हैं। इसलिए संत यदि किसी पर मेहरबानी करते हैं, कृपा करते हैं तो उसका संसारिक चीजों से मोह धीरे-धीरे कम करते चले जाते हैं। इसलिए संत से दुनिया मत मांगों। सिर्फ उतना ही मांगो जितना मे निर्वाह हो जाए। बाकी ईश्वर का प्रेम मांगो। परम ज्ञानी वही है जो अपने मन को सबसे नीचा समझता है। सब कुछ है उसके पास परन्तु व्यवहार में वह बड़ी दीनता के साथ चलता है।

# परमात्मा कैसे मिले ?

नव वैराग की तुलना कन्याओं से की गई हैं। विवाह के बाद बहुधा उनका जीवन शुरू-शुरू में सुखद नहीं होता। माता पिता के घर में बड़े लाड-प्यार से उसका पालन पोषण किया जाता है। जब वह ससुराल जाती है तो उसको नया जीवन मिलता है। सास कुछ आशा रखती है, पति कुछ आशा रखता है। परिवार के लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं। उसका जीवन एक उलझन सा होता है। इस प्रकार की अवस्था जिज्ञासुओं की होती है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि ईश्वर, जो उसका सच्चा पति है, तुरंत मिल जाए और उसका जीवन सुखमय बन जाए, उसे किसी प्रकार का कष्ट न रहे, किसी प्रकार का दुख न रहे, किसी प्रकार की मानसिक या शारीरिक पीड़ा न रहे। यह आंतरिक इच्छा-आशा प्रत्येक व्यक्ति की होती है।

जिज्ञासु के रूप में गुरदेव स्वयं ही प्रश्न करते हैं कि ' सौं ' पति यानी परमात्मा कैसे मिले ? प्रभु कृपा से कन्याओं में सहनशक्ति, सहयोग की शक्ति बचपन से ही होती है। ससुराल में जाती हैं तो मायके को भूल जाती है। नए वातावरण को तुरंत अपना लेती है। अनेक उत्तेजनायें मिलती हैं, कठिनाइयां आती है। इस परिस्थिति में यह कन्या, जिसे अभी जीवन का ज्यादा ज्ञान नहीं है, वह अज्ञानी है, वह क्या करें ? गुरदेव स्वयं हीं उत्तर देते हैं। ' आप गंवाइए, ता सौं पाइए '। यानि अपना आपा खो दें, अहंकार को खत्म कर दें , दीनता, ताल-मेल, सहयोग इन गुणों को अपनाएं तो ईश्वर की प्राप्ति तुरंत हो सकती है। यही बात जिज्ञासुओं को करनी है। अहंकार को त्यागें और दीनता व ईश्वर के साथ सहयोग ( राजी-व-रजा ) को अपनाएं। आँखें बंद करके अभ्यास करने से शक्ति मिल सकती है। तनिक सा आंतरिक सुख भी मिल जाए, परन्तु यह काफी नहीं है। हमारे भीतर में जो त्रुटियां, बुराइयां, अहंकार भरा पड़ा है वो दूर होना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक हम प्रभु रूपी आनंद सागर

में अपने आपको कैसे लय कर पाएंगे ? आपको निरंतर आनंद, निरंतर सुख की प्राप्ति नहीं हो पायेगी। यही पहला और आखिरी कदम है।

जो पुरुष हैं उनको स्त्री वर्ग से, बहनों से सीखना है। लड़कियों में, बहनों में दीनता का गुण स्वाभाविक रूप से होता है। जब तक हम करुणा, दया, सहानुभूति, सेवा - इन गुणों को नहीं अपनाएंगे, तब तक हमें ईश्वर या गुरु की समीपता प्राप्त नहीं हो सकती। इन गुणों के होते हुए भी जिज्ञासुओं में अहंकार रह जाता है और वह भिन्न-भिन्न रूप धारण करके आता है। जैसे रावण की सिर पर गधे का सिर रखा है, ग्यारह से लगाए हैं , ये सब अहंकार के भिन्न-भिन्न रूप हैं। यह गधे का सिर केवल रावण के शरीर पर ही नहीं था , हमारे और आपके सबके शरीर पर हैं। हम रावण के सिर को तो हर साल दशहरे पर जलाते हैं, लेकिन हमारे शरीर के ऊपर जो रावण का सिर( अहंकार ) है उसको हमने कभी नहीं जलाया है। जब तक हम उस सिर को नहीं जलाएंगे, अहंकार का खात्मा नहीं करेंगे, तब तक हमें परमात्मा की प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती।

जिज्ञासु एक अज्ञानी बाला की तरह क्या करें ? पति ( परमात्मा ) तो तुम्हारे भीतर में बैठा है हैं। तुम किस अज्ञान मेंपड़े हो ? शंकराचार्य जी कहते हैं ' तत्वमसि ' ईसा मसीह कहते हैं ' know thyself- that thou art '( अपने आप को पहचानो- तुम वही हो ) हे भोले-भाले मनुष्य ! तुम तो स्वयं वही हो। परमात्मा, सच्चा पति, तो तुम्हारे भीतर ही है। उसी बात का गुरदेव पुनः हमें विश्वास दिला रहे हैं कि तुम परमात्मा का अपने अंतर में दर्शन करके प्रेम की अनुभूति क्यों नहीं करते हो ? हे अनजान बाला ! वो धन, वो पति, वो परमात्मा, तो इतना नजदीक है जितना तू सोच भी नहीं सकती।

परमात्मा को बाहर क्यों ढूंढ रहे हो ? वह तो तुम्हारे भीतर है। महर्षि रमण ने भी कहा है कि लोग बाग ईश्वर को बाहर से बुलाते हैं, परन्तु वो भूल जाते हैं कि ईश्वर तो उनके भीतर बैठा है। उसको क्यों नहीं देखते ? वह नजदीक से नजदीक, समीप से समीप हैं। उसकी अनुभूति क्यों नहीं करते ? उसके दर्शन क्यों नहीं करते ? बाहर ढूंढने से क्या फायदा ? जंगल में जाने से क्या फायदा ? हम अज्ञानवश यह समझते हैं कि हम तो यह शरीर है और हमारे भीतर में जो संकल्प विकल्प उठतेरहते हैं, यही हमारा असल है। पर हमारा असली रूप तो हमारी आत्मा है जिसका अज्ञानवश हम सुमिरन नहीं करते। मृग की नाभी में सुगंधी है पर वह उसकी खोज में मारा-मारा फिरता है। वह कस्तूरी रूपी आत्मा हमारे भीतर में है परन्तु हम उसे ढूंढते बाहर हैं।

गुरुदेव कह रहे हैं कि आपके भीतर में ही आत्मा, परमात्मा, आपका सच्चा पति बैठा है। अज्ञान और अहंकार को छोड़ो और उसके चरण कमलों को पकड़ लो। भीतर कैसे चले ? पति

को कैसे प्रसन्न करें ? पति के प्रति लज्जा रखें, प्रेम भाव रखें। अपनी आंखों में क्षमा का काजल डालें ताकि ये आँखें पति के दर्शन कर सकें। आपका श्रृंगार किस प्रकार का हो ? वह भाव का हो, प्रेम और श्रद्धा का हो। भय और भाव को अपनाएं , श्रद्धा और दीनता को अपनाएं। जब हम इन गुणों को अपनाते हैं ऐसा श्रृंगार, ऐसा काजल, और ऐसे वस्त्र पहनते हैं तो हम अधिकारी हो जाते हैं , पति हमारा प्रसन्न हो जाता है। **' ता सुहाग जानिये लागी जो सौं भरे पियार '**। स्त्री तभी सुहागिन हैं यदि पति के साथ उसका प्रेम है। नहीं तो पति के होते हुए भी वह दुहागिन हैं। हम भी जिज्ञासु या ईश्वर-प्रेमी तभी कहला सकते हैं जब हमारा ईश्वर के साथ सच्चा प्रेम हो। किस प्रकार का प्रेम मछली को पानी से निकाल देने पर उसकी क्या अवस्था होती है ? वह जल के बिना नहीं रह सकती , अपनी जान दे देती है। सच्ची स्त्री का ऐसा प्रेम होना चाहिएकि वह पति के बिना रह ही न सके। जिज्ञासु परमात्मा के बगैर रह ही न सके। वह प्राण दे दे जब तक उसका पति परमात्मा न मिले। वह जिज्ञासु दुहागिन है ,वह सत्संगी नहीं है जो अपने इष्टदेव के लिए, परमात्मा के लिए, सच्चे पति के लिए व्याकुल नहीं होता। 'तुझे रो रो के याद करना अजीज की जिंदगी है'।

स्वामी रामतीर्थ के पास स्वामी विवेकानंद गए। शाम को उन्होंने प्रवचन दिया। घर लौटे तो स्वामी रामतीर्थ से पूछा- आज आपने मेरा प्रवचन सुना, कैसा लगा ? स्वामी जी ने उत्तर दिया- 'एक बात कहूँ बुरा तो नहीं मानोगे ?' विवेकानन्द जी ने कहा ' नहीं '। रामतीर्थ जी ने कहा कि भक्ति पर प्रवचन हो और आपकी आंखों से एक अश्रु भी न गिरें, यह कैसा भक्ति पर प्रवचन है ? भक्ति की हमारी साधना हो और हमारे भीतर में व्याकुलता न हो, तो ये कैसे हमारी साधना है। गुरुदेव कहते हैं कि सुहागिन वही है जो अपने पति से प्रेम करती हैं। अपना सब कुछ न्योछावर कर देती है, अपनी कोई इच्छा नहीं रखती । उसका रूप, श्रृंगार, व्यवहार सब कुछ पति की प्रसन्नता के लिए होते हैं। इसी प्रकार सच्चे जिज्ञासु की साधना यह होती है कि उसके प्रत्येक व्यवहार का अंग साधना का रूप लिए हुए हो और उसका परिणाम इष्ट देव की प्रसन्नता हो। उसे और कुछ नहीं चाहिए। **'राज न चाहों , मुक्ति ने चाहों , प्रीत चरण कमला रे'**। प्रेम में कुछ मांगना नहीं होता, कोई आशा नहीं होती , बलिदान होता है। सब कुछ निछावर कर देते हैं। हम यह भी नहीं जानते कि हम अपने पति के साथ प्रेम क्यों करते हैं ? गुरुदेव ने प्रेम के लक्षण बताए हैं। हम जाने ही नहीं कि हम क्यों प्रेम करते हैं ? इस प्रेम में कोई आशा न रखें। यदि हम प्रेम में कोई आशा या आकांक्षा रखते हैं तो हमारी प्रेम की भावना सच्ची नहीं है। यदि हम चाहतेहै कि हमारा यह सांसारिक काम हो जाए, वह हो जाए, तो यह तो स्वार्थ है परमार्थ नहीं। पति उस पर प्रसन्न होता है जो अपने जीवन की आहुति दे देता है। कुछ नहीं चाहिए। यहां तक कि मुक्ति भी नहीं चाहिए।

हम में सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न ही नहीं हुई है। हम अभी अनजान वाला है, हमें पता ही नहीं है कि हम प्यार कैसे करें ? हम अनजान है, हमने रास्ता नहीं देखा है। गुरु हमारा मार्गदर्शन करता है। हम आप बड़ी कोशिश करते हैं परन्तु परमात्मा के चरणों की प्राप्ति नहीं होती। गुरदेव कहते हैं कि हमारी व्याकुलता उसे अच्छी लगती है, हमारा रोना उसको अच्छा लगता है। हमारे प्रेमा-अश्रु उसके चरण कमल धो डालें, यह उसको अच्छा लगता है। जब तक हम ऐसा नहीं करेंगे, आराम से बैठेंगे और सबेरे उठते ही बगैर संध्यापूजा किये दफ्तर को चले जाएंगे तो काम नहीं चलेगा।

अपने भीतर में परमात्मा, अपने इष्ट के प्रति व्याकुलता अपनाएं। उससे मिलने की ऐसी तड़प हो जैसे मछली को जल की होती है। आप में दीनता हो राजी-व-रजा हो। जिस हाल में परमेश्वर आपको रखे, खुश रहें। तभी हम सच्चे जिज्ञासु कहलाने योग्य होंगे, अहंकार का त्याग करे, दीनता अपनाए। इष्ट के प्रति व्याकुलता उत्पन्न करें। कोई काम ऐसा न करें जिससे हमारे ईस्ट की अप्रसन्नता हो। कोई पल उसकी याद से खाली न जाए। तब हम अंतर में उसके दर्शन और उसके प्यार की अनुभूति कर सकेंगे।

# मन की स्थिरता में सफलता

मन हमेशा बेफायदा इधर उधर की बातें सोचता रहता है । जब तक वह ऐसा सोचता रहेगा संध्या में मन नहीं लगेगा। इसलिए मन को वेफायदा खयालों और वेफायदा उमंगों से हटाना चाहिए। लेकिन चूंकि वह मुद्दत से इन बातों को सोचता रहा है अतः वह एक साथ नहीं छोड़ेगा, समय लगेगा । लेकिन अभ्यास और गुरु के प्रेम में फंसकर मन अहिस्ता-अहिस्ता शांत होने लगता है।

मन का स्वभाव है बेवजह सोचना और इसकी-उसकी करना। परंतु हमारा कर्तव्य है इसको ईश्वर के चरणों में लगाना । मन की आदत है किसी के प्रति राग किसी के प्रति द्वेष रखना। परंतु साधक को सिवाय ईश्वर के और कुछ नहीं सोचना है। साधना में सावधान होकर विचार मुक्त होकर बैठना चाहिए। साधना यही करनी है कि ईश्वर के ख्याल में मन को लगाना है। **'मन तू ज्योत स्वरूप है, अपना मूल पहचान'** अरे मनुष्य ! तू तो वही है, तेरा स्वरूप वही है जो ईश्वर का है। तू उसी परमात्मा का अंश है, उसी का बेटा है। 'तत्व असि'। वह सत् चित्त आनन्द है तू भी सत् चित्त आनन्द है। हमें सतचित आनंद की स्थिति में रहने का प्रयास करना चाहिए। ज्ञान साधना में हम 'अहम्ब ह्मास्य' की साधना करते हैं। भक्ति साधना में हम तत्वम असि की साधना करते हैं। ईश्वर के स्वरूप और गुणों का ध्यान करते हैं। उसके गुणों को अपनाने की कोशिश करते हैं। अन्य कोई ख्याल नहीं, और सब भूल जाइए। मन को सांसारिक बातों को सोचते हुए पता नहीं कितना वक्त हो गया। प्रयास करते रहे। धीरे-धीरे इसे समझ आ जाएगी और यह मन आत्मस्वरूप हो जाएगा। इसका वही स्वरूप हो जाएगा जो ईश्वर का है। कोई सांसारिक लोभ इसे प्रभावित नहीं कर पाएगा। अपने आप को तीन गुणों से ऊपर उठाना है। हमारे मानव जीवन का लक्ष्य यही है- ईश्वर जैसा बनना है। इस सच्चाई को पहचानना है कि तेरी ज्योति इश्वर ज्योत का अंश है।

आपका मन सारी उम्र आत्मा से शक्ति लेकर विचार उठाता है और आपको सत्-चित-आनंद की ओर नहीं जाने देता। आपको इन्हीं विचारों पर काबू पाना है। इस आत्मिक शक्ति का प्रयोग ईश्वरीय गुणों को अपनाने में लगाना है।

**मन जीते जग जीत'** जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली, समझ लो उसने विश्व पर विजय प्राप्त कर ली। यह बहुत कठिन कार्य है, परंतु इसके बगैर हमारा गुजारा भी नहीं है। स्लो एंड स्टेडी विन्स द रेस' धीरे-धीरे अपने लक्ष्य की ओर बढिए। एक दिन विजय प्राप्त हो ही जाएगी। यह एक जन्म का नहीं जन्म-जन्मांतर का प्रयास है। डरना नहीं है। हमें अपने भोजन और संगति पर ध्यान देना है। सब में ईश्वर के दर्शन करो।

**" भीतर बाहर एको जानो , यह गुरु ज्ञान बताई।**

**कह नानक बिन आपा चीने, मिटे न भ्रम की काई"**

अपने पराये को छोड़ो। सब एक हैं। तम और रज से ऊपर उठो व सत् को पहचानो। 'सत्यम, शिवम, सुन्दरम' यह ईश्वर का स्वरूप है, और यही तेरा भी स्वरूप है। तो कहाँ भटके हुए हो। अंतर की ओर घुस कर तो देख, तू तो वही है जो ईश्वर है। हृदय में कमी 'संबंध' की है। संबंध बनाओ, वह तुम्हारा असली परमपिता है। उसके प्रति धारण किए गए हर विचार में तुम्हारा कल्याण है। संबंध बनाने का प्रयास करो, तभी तुम आत्म-साक्षात्कार कर सकोगे। इसलिए अभ्यास करते रहो। और इसको कभी मत छोड़ो। गुरु की बातों को सोचकर प्रेम बढ़ाओ। जितना तुम्हारा प्रेम बढ़ता जाएगा, उतना तुम्हारा मन शांत होता जाएगा। ईश्वर को पहचानो , छोड़ दो इस संसार को। जहां यह हुआ वहीं- यू आर वेरी नियर टू गॉड (आप ईश्वर के बहुत निकट है।

# सर्व भूतों के प्रति कृतज्ञता - 5 यज्ञ

हर एक मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह सुख चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि उसका जीवन कुशलमय हो, आनंदमय हो, उसे किसी प्रकार का दुःख न आए, किसी प्रकार की चिंता न हो, सुख ही सुख हो। वह मौत के भय से मुक्त होना चाहता है। मरना भी नहीं चाहता, वह ऐसा जीवन चाहता है जिसमें किसी प्रकार का दुःख न हो, सुख हीं सुख , आनंद ही आनंद, चाहता है। उसकी यह चाह झूठी नहीं है, सच्ची है। यह उसका स्वभाव है। आत्मा-परमात्मा का अंश है। परमात्मा सत् चित्त आनन्द है जो सत्य है , हमेशा रहने वाला है। उसकी उत्पत्ति नहीं, मृत्यु नहीं। जो अमर है, अटल है, सत्य ज्ञान है। तीनों गुणों से परमात्मा मुक्त है , उसे किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं है। निरंतर आनंद की गंगा बह रही है। हमारी आत्मा उसी परमात्मा का अंश है। परन्तु हमारे पिछले संस्कारों के आवरण से ढकी हुई है। यह वह उस बंधन को मुक्त होना चाहती है और असली स्वरूप को, आनंद स्वरूप को देखना चाहती है। वह मनुष्य चोले में ही इन आवरणों से मुक्त होकर अपना असली स्वरूप देख सकती है। मनुष्य चाहता है कि मैं इन संस्कारों से, इन बंधनों से मुक्त हो जाऊँ। परन्तु ऐसा बन नहीं पाता। सौ में से भले ही एक ऐसा व्यक्ति मिले जिसके हृदय में संतोष हो और जो यह कह सके कि ईश्वर का शुक्र है मैं सब तरह से सुखी हूँ। सांसारिक व्यक्तियों को तो छोड़िए, जो परमार्थ के रास्ते पर चल रहे हैं वे व्यक्ति भी दुःख का अनुभव करते हैं। पूर्ण सुख उसको भी नहीं है।

मनुष्य की आत्मा परमात्मा का अंश है। जो गुण परमात्मा के हैं वे ही प्रत्येक व्यक्ति में हैं। फिर भी मनुष्य दुखी क्यों है ? परमात्मा सर्व व्यापक है , कण-कण में – मनुष्य के रोम रोम में है। फिर भी हमें परमात्मा की अनुभूति क्यों नहीं होती ? हमारे में वह गुण क्यों नहीं विकसित होते जो परमात्मा के हैं ? मनुष्य अपने अहंकार के कारण अति समीप होते हुए भी

उस परम सत्ता से, उस ज्ञान शक्ति और आनंद से वंचित रहता है। तो हमें क्या करना है ? हमें इस अहंकार को त्यागना है और दीनता अपनाना है। हजरत ईसा ने कहा है कि ईश्वर से प्रेम करो, उसकी उपासना करो और ईश्वर के जितने रूप हैं, विशेषकर मनुष्य उससे भी प्रेम करो। अपनी संतान को सब प्रेम करते हैं परन्तु यह प्रेम नहीं मोह है जो बदलता रहता है। परन्तु प्रेम नहीं बदलता। यह सारा संसार ही ईश्वर का स्वरूप है। इस विशाल संसार में यदि हम किसी एक के प्रति भी द्वेष करते हैं तो क्या हम ईश्वर से प्रेम कर सकते हैं। हजरत ईसा कहते हैं कि यदि तुम ईश्वर से प्रेम करना चाहते हो तो ईश्वर की जनता चाहे वो अमीर हो या गरीब, चाहे वो तुमसे मित्रता करते हों या शत्रुता सबके साथ ऐसा प्रेम करो जैसा तुम मुझसे करते हो। वो सब मेरे मेरा ही तो रूप है।

मनुष्य जब तक अपने अहंकार को नहीं त्यागेगा, दीनता को नहीं अपनाएगा एवं स्नेह के साथ ईश्वर की पूजा नहीं करेगा , तो वह उपासना नहीं है। ईश्वर की उपासना यह है कि सबके साथ प्रेम करो। चाहे कोई हमारे साथ कितनी भी बुराई करता हो उससे भी वैसा ही प्रेम करो जैसे ईश्वर से करते हो।

शास्त्रों में लिखा है कि प्रेम को , धीरे-धीरे बढाते जाओ। पहले सर्वभूतों (जल, वायु, सूर्य, चंद्रमा, आकाश, सितारे) के साथ और जितनी भी प्रकृति आपको नजर आती है, सबके साथ प्रेम करो। सब के साथ सेवा का व्यवहार करो। यह जो आकाश, सूर्य, चंद्रमा, वायु, जल है, यदि यह न हो तो हमारा जीवन कैसे कायम रह सकता है ? क्या हमने कभी इन भूतों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है ? तो प्रेम की पहली कक्षा है कि ये जो भूत है उनके प्रति हमारा स्नेह होना चाहिए। जो व्यक्ति इस प्रथम यज्ञ में आहुति देता है, परमात्मा के उस रूप के साथ उसकी तद्रूपता हो जाती है। दूसरी सेवा मनुष्य की है। यह दूसरा यज्ञ है। धीरे-धीरे व्यक्ति यह समझे कि यह जितना संसार है, मेरी सहायता करता है। मैं उसके आश्रित रह रहा हूँ। जब वह इस बात को अपने भीतर में धारण कर लेगा तो उसका व्यवहार सबके साथ एक जैसा होगा। अब जब सब भूतों के साथ तद्रूपता हुई, सभी मनुष्य के साथ स्नेह हुआ, तब विचार होने लगता है कि ये सब मेरे ही तो रूप है। यह सब एक प्रकार के यज्ञ है।

तीसरा यज्ञ बताया है पितरों के प्रति, माता-पिता या दूसरे महापुरुषों के प्रति। उनका जीवन हमें स्मरण कराता है कि इस संसार की लीला क्या है ? ये शरीर रहने वाला नहीं है। उसकी याद हमें बताती है कि तुम भी उनके पास पहुंचने वाले हो। नींद में मत रहो, शुभ कर्म करो। यदि शुभ कर्म नहीं करोगे तो शांति से नहीं रहोगे और मरने के बाद तुम्हारा श्राद्ध भी कोई नहीं करेगा । हम सतर्क रहे, पता नहीं यह शरीर कब छूट जाए।

जिसको सच्चा गुरु मिल गया है, वह कितना भाग्यशाली है कि उसके जीवन में गुरु एक नया दौर ले आया है। बौद्ध मत में जब साधना पर बैठते हैं तो, पहले महात्मा बुध के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं , फिर संघ यानी बौद्धमत के प्रति और फिर इनके उपदेश के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। किन्तु हम लोग ऐसा नहीं करते। हमारी कृतज्ञता गुरु के प्रति यह होनी चाहिए कि हम अपना जीवन को वैसा ही बना लें जैसा हमारे गुरु महाराज ने हमें आदेश दिया है। हमारी कृतज्ञता केवल शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं होनी चाहिए, हमारे व्यावहारिक जीवन द्वारा प्रकट होना चाहिए। उनके प्रति अपने जीवन की आहुति दे दो। काम, क्रोध आदि सब विषयों का त्याग कर दो। सब इन्द्रियों को अपने वश में करो। किसी की निंदा मत करो, सब की सेवा करो। गुरु के प्रति कृतज्ञता यही है कि उसका जो उपदेश है अथवा मेरे प्रति उनका जो आदेश है हम उसका पालन करें। उसके प्रति यदि हमें अपने जीवन का बलिदान भी देना पड़े तो दे दें। तब हम अपने इष्टदेव के प्रति कृतज्ञ हो सकते हैं।

उसके बाद आता है परमपिता परमात्मा में समर्पण। जब ये चारों यज्ञ सफल हो जाते है तब इस पांचवें यज्ञ में देर नहीं लगती यानि हमारी आत्मा परमात्मा में विलय हो जाती है। योग हो जाता है। एक तो होती है जड़ समाधि, जब हम कहते हैं कि हम रोज पूजा में बैठते हैं, घंटा भर सबेरे और घंटा पर शाम, तब भी ध्यान नहीं लगता, मन की चंचलता नहीं जाती। ऐसा इसलिए है कि हमारा सारे दिन का व्यवहार ईश्वरमय नहीं है। इसका कारण यही है कि हमने पूरी तरह से अपने जीवन की आहुति न तो प्रकृति के चरणों में अर्पण की है, न पितरों के प्रति और नगर के उद्देश्यों के प्रति।

मनुष्य का जीवन एक बलिदान होना चाहिए। ईश्वर के प्रेम-यज्ञ में आहुति का रूप होना चाहिए। भगवान कहते हैं कि मनुष्य जितने भी कार्य करें, आहुति के रूप में होने चाहिए। कोई आकांक्षा न हो यानि हम कोई इच्छा न रखें। हमारे जितने भी कार्य होते हैं उनमें यह भावना छिपी रहती है कि चाहे सारा संसार दुखी हो जाए, परन्तु हमें सुख पहुंचे। आप अपने व्यवहार का स्व-निरीक्षण करके देख लीजिये। यदि इसके विपरीत हो तो आप भाग्यशाली हैं कि आपके कर्म में अपने निजी हित की कोई आशा नहीं है, कोई इच्छा नहीं है, बल्कि आपके भीतर में यही इच्छा है कि किसी तरह से दूसरे को सुख पहुंचे, शांति मिले, आनंद मिले। कर्म यज्ञ की आहुति में निष्काम भाव से रत तभी हो सकेंगे जब आप अपने सुख की चिंता छोड़ देंगे।

कबीर साहब कहते हैं कि परमात्मा रूपी सागर तो सर्वव्यापक है। भीतर में भी और बाहर में भी परमात्मा है। स्पांज ( sponge ) को अगर पानी में डालो तो वह भीग

जाता है। उसके अंदर और बाहर पानी ही पानी हो जाता है, परंतु मनुष्य एक चट्टान या पत्थर की तरह है, वह नहीं भीगता। ईश्वर रूपी सागर के प्रेम रूपी जल में मनुष्य रह रहा है परंतु इसकी गति पत्थर की तरह है। पत्थर सागर में वर्षों पडा रहता है मगर वैसा का वैसा ही रहता है। मनुष्य की भी यही गति है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और इंद्रियां ये सब मिलकर मनुष्य को ऐसा जकडे हुए हैं कि आत्मा में जहां भगवान बैठे हुए हैं, उसकी सूरत जाकर समाती नहीं है, लय नहीं होती।

परमात्मा तो आपके भीतर ही है। कहीं दूर नहीं, इतना नजदीक कि आप सोच भी नहीं सकते। परंतु तब भी आश्चर्य और दुःख की बात है कि हम परमात्मा से दूर रहते हैं। तो कोशिश करें, अपने जीवन को महापुरुषों के बताये हुए रास्ते पर चला कर अपने अहंकार को सच्ची दीनता में बदल दें। कबीर साहब कहते हैं **'मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर'**। अपनत्व छोड़ दीजिये। **'कबीर हम सबसे बुरे , हम से भले सब कोय , जो ऐसा कर जाने मीत हमारा सोय'**। कबीर साहब कहते हैं कि जिस व्यक्ति को ऐसा ज्ञान हो गया, जिसके भीतर में प्रकाश ( enlightment ) हो गया, आत्मा की अनुभूति हो गई, भीतर की आँखें, अंतर के कपाट खुल गए, वह सारे विश्व को ही खुली आंखों से परमात्मा का रूप देखता है। खुली आंखों का मतलब है कि अब मन भी मानने लगा, बुद्धी मानने लगी, और आत्मा परमात्मा से मिलकर एक हो गई। यह तो हम सभी जानते हैं कि परमात्मा है, परन्तु सबको उसका भान नहीं होता, ज्ञान नहीं होता। कबीर साहब फरमाते हैं कि जो व्यक्ति ऐसा अनुभव कर लेता है कि परमात्मा सब में ही विराजमान हैं, वह मुझसे श्रेष्ठ है, मेरा सच्चा मीत या मेरा गुरु है। गुरु ही हमारा सच्चा मित्र होता है।

तो प्रयास करें कि हम अपने अहंकार को परमात्मा के चरणों में अर्पण कर दे। इसके लिए कई रास्ते बताए गए हैं। या भक्ति से भी, ज्ञान से भी , कर्म से भी हो जाता है। भगवान कृष्ण ने गीता में एक ही रास्ता बताया है कि सब धर्मों को छोड़ कर केवल एक मात्र मेरी शरण में आ जा। अर्जुन को स्वतंत्रता दी है कि तुम्हें जो रास्ता अच्छा लगता है तुम वह ही रास्ता अपनाओ परन्तु समता सब में अपनानी है। दुःख-सुख से, द्वंदों से, ऊपर उठना है। जब तक द्वंद है तब तक मन है, अहंकार है और जब ये खत्म हो जाते हैं तब एकता ( सूफियों की वहदियत ) आती है। ये तभी खत्म होते हैं जब हमारा रोम-रोम एकता को अपना लेता है। हमारी वृत्ति एकता की हो जाती है। भिन्न-भिन्न रूपों को देखते हुए उस स्थिति में हम एकता की अनुभूति करते हैं- मनुष्यों के साथ, सर्वभूतों के साथ भी, संतों के साथ भी और यम के साथ भी। कहीं भिन्नता है हीं नहीं।

**'उर धारे जो अंतर नाम, सर्वमय देखें भगवान'**। उस नाम को, उस आत्मा के कण को, अपने रोम-रोम में बसायें। नाम रूपी अमृत को हृदय में बसायें। वह नाम हमारे रोम-रोम में उतर जाये, हमारा सहज स्वभाव बन जाए। तब क्या होता है ? हम सब जगह अपना या परमात्मा का रूप देखते हैं। प्रयास के साथ नहीं, सहज अवस्था में। यह नाम की अंतिम सीढी है, वही रूप है जो आत्मा का है , परमात्मा का है। जब वह हमारे रोम-रोम में समा जाता है, हमारे हृदय में उतर जाता है, वह नाम हमारे कण-कण में व्याप्त हो जाता है। तब आप पूर्णतया परमात्मा के तद् रूप हो जाते हैं तब परमात्मा तो आप हो ही गए, आत्मस्वरूप हो ही गए। आत्मा आत्मा को देखती हैं- 'सर्वमय देखें भगवान'। सब में ही भगवान के दर्शन होते हैं। उस स्थिति में कोई संस्कार नहीं रहता। यह स्थिति अभ्यासी को भी कभी-कभी क्षण भर के लिए आ जाती है। परंतु जिस स्थिति का वर्णन गुरुदेव कर रहे हैं वह तो सहज अवस्था है। वहाँ आत्मा, परमात्मा, या जिज्ञासु में कोई अंतर नहीं है।

गुरुनानक जी कहते हैं कि बिना सद्गुणों को अपनाए हुए सच्ची भक्ति नहीं होती, भक्ति में सफलता नहीं मिलती। भक्ति तो हम सब लोग करते ही हैं पर हमारी भक्ति सफल क्यों नहीं हो रही ? उच्चकोटि के संत कृष्ण मूर्ति जी, जो ईश्वर को नहीं मानते थे कहते हैं इस रास्ते में सद व्यवहार ( moral conduct ) की अति आवश्यकता है। इसलिए हमारे यहां यम-नियम का पालन कराते हैं। और कुछ नहीं हो सकता तो चौबीस घंटे अपने मन को देखते रहो कि इसमें किसी के प्रति घृणा की, इर्ष्या की, भावना तो नहीं है, किसी को दुख पहुंचाने की इच्छा तो नहीं है। यदि हमें ईश्वर बनना है, आत्म-स्वरूप बनना है, आत्मा का साक्षात्कार करना है, ईश्वर के दर्शन करने हैं तो, हमे ईश्वर के उन गुणों को जो शास्त्रों में लिखें या महापुरुष ने बतालाए हैं, अपनाने का प्रयास करना चाहिए।

अपने जीवन को यज्ञ का, बलिदान का रूप दें। सबको सुख पहुंचाने का प्रयास करें- ईश्वर मिल जाएंगे। जो समाधि, जो साधना, जो अभ्यास, जो एकाग्रता या स्थिरता जिसके परिणामस्वरूप हमारे भीतर ईश्वर के गुण विकसित नहीं होते, उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। हममें ईश्वर के गुण विकसित होने चाहिए। आप सब का लक्ष्य संत बनना है। संत ही सत्-स्वरूप का नाम है। ईश्वर ही सत्य का दूसरा नाम है।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।